# छत्तीसगढ़ी संस्कृति और विभूतियां

– डॉ. राम कुमार बेहार





नारायणपाल (बस्तर) का मन्दिर

# छत्तीसगढ़ी संस्कृति और विभूतियाँ


लेखक

**डॉ. राम कुमार बेहार**

प्राचार्य

शास. दु.श्री.वै. संस्कृत महाविद्यालय

रायपुर (छत्तीसगढ़)





प्रकाशक

**छत्तीसगढ़ शोध संस्थान**

370, सुन्दर नगर, रायपुर (छ.ग.)

प्रकाशन वर्ष
2003

कीमत –
सजिल्द 125/– रू.
सामान्य 60/– रू.

# छत्तीसगढ़ी संस्कृति और विभूतियाँ

## CHHATTISGARHI SANSKRITI AUR VIBHUTIYAN

- लेखक डॉ. राम कुमार बेहार


- प्रकाशन वर्ष– 2003

- प्रकाशक –
छत्तीसगढ़ शोध संस्थान
370, सुन्दर नगर, रायपुर
फोन : 2242888

- कीमत –
सजिल्द 125/– रू.
सामान्य 60/– रू.

- मुद्रण व्यवस्था
महाबीर ऑफसेट
गीतानगर, रायपुर (छ.ग.)
फोन 2255140, 2255141

- कम्प्यूटर कम्पोजिट
देवांगन कम्प्यूटर
प्रगति विहार कालोनी
संतोषी नगर, रायपुर
फोन : 2411676

## समर्पित –

चिरंजीव– मितेश बेहार (M.C.A.)
प्रोग्रेम– इंजीनियर को जिसने
अपनी योग्यता, परिश्रम व लगन
से परिवार को गौरवान्वित किया

# छत्तीसगढ़ी संस्कृति और विभूतियां

– डॉ. राम कुमार बेहार

## विषय – सूची

# अध्याय- 1

# छत्तीसगढ़ का गौरव स्तंभ

## किरारी का काष्ठ स्तंभ

1921 का वर्ष भारतीय इतिहास के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण वर्ष था। इस वर्ष हड़प्पा सभ्यता के बारे में भारत व सभ्य संसार को जानकारी मिली। सिन्धु घाटी के तटपर खुदाई से प्राप्त इस सभ्यता की खोज ने, संसार में आज भी भारत को प्राचीनतम सभ्य राष्ट्र का विशेषण प्रदान किया है। छत्तीसगढ़ अंचल के इतिहास में भी वर्ष 1921 ई. का महत्वपूर्ण स्थान है। इस वर्ष के अप्रेल माह में बिलासपुर जिले के किरारी नामक गांव के तालाब से काष्ठ स्तंभ प्राप्त हुआ। इस काष्ठस्तंभ में जो लेख खुदे थे उससे प्राचीन छत्तीसगढ़ के गौरव का ज्ञान होता है। किरारी का यह काष्ठ स्तंभ सही कहा जाय तो छत्तीसगढ़ का गौरव स्तंभ है। इस स्तंभ लेख से यह प्रमाणित होता है कि छत्तीसगढ़ प्राचीन काल से सभ्य सुसंस्कृत अंचल रहा है। 1921 में तालाब की खुदाई से प्राप्त इस काष्ठ स्तंभ के लेख के आधार पर इतिहासकारों ने इसे ईस्वी सन की दूसरी शताब्दी का माना है। लेख की भाषा प्राकृत एवं लिपि ब्राम्ही है। इस काष्ठ स्तंभ में जिन राजकीय अधिकारियों के नाम उत्कीर्ण है उसके आधार पर इस अंचल में व्यवस्थित शासन के दिग्दर्शन होते हैं। भारतीय कूटनीतिज्ञ चाणक्य ने अपने अर्थशास्त्र में जिन राजकीय पदाधिकारियों का वर्णन किया है उसमें से अनेक का उल्लेख किरारी के काष्ठ स्तंभ लेख में है।

काष्ठ स्तंभ के बारे में पुरातत्व वेत्ताओं व पुरातत्व में रूचि रखने वालों को जानकारी देने का श्रेय तत्कालीन भारत के सुप्रसिद्ध पुरातत्ववेत्ता डॉ. हीरानंद शास्त्री को जाता है। काष्ठ स्तंभ का गंभीरता से अध्ययन कर उन्होंने काष्ठ स्तंभ को भारत का अद्वितीय स्तंभ माना है। शिला स्तंभ एवं शिलालेख तो अनेक मिले हैं मगर काष्ठ स्तंभ की सूची का यह एकलौता स्तंभ है। एपिग्राफिया इंडिका के ग्रंथ 18 क्रं. 19 पर इस स्तंभ लेख के बारे में सर्वप्रथम अधिकारिक स्तर पर लेख प्रकाशित हुआ। डॉ. हीरानंद शास्त्री को निश्चित रूप से छत्तीसगढ़ मित्र कहा जा सकता है।

आज छत्तीसगढ़ में जागरण के जो प्रयास किये जा रहे हैं उस दौर दौरा में छत्तीसगढ़ के गौरव स्तंभ किरारी के काष्ठ स्तंभ के बारे में अधिक से अधिक जानकारी देना समय की मांग है , वक्त की पुकार है। हम उस अंचलके निवासी है जहां ई सन की दूसरी शताब्दी में ऐसा सुव्यवस्थित शासन था जिसके पदाधिकारी समकालीन भारत के पदाधिकारियों जैसे ही थे।

यहां यह उल्लेख करना समीचीन होगा कि प्राचीन भारत में या सही कहा जाय तो प्राचीन भारतीय द्वीप समूह में इस प्रकार के स्तंभ मिले हैं जिन्हें यज्ञ स्तंभ कहा गया है। किरारी के स्तंभ को छोड़ शेष स्तंभ पत्थर के है। किरारी का स्तंभ काष्ठ का है तालाब के

बीच इस प्रकार के स्तंभ प्रायः मिलते हैं।

इस काष्ठ स्तंभ की प्राप्ति की कहानी भी कम रोचक नहीं है। 1921 में अकाल के कारण बड़े- बड़े तालाब भी सूख गया। तालाब की मिट्टी खेतों के लिए अत्यंत लाभकारी होती है। इसीलिए किसान अपने खेतों के लिए तालाब की मिट्टी ले जाते हैं किरारी तथा आसपास के गांव के लोग तालाब से मिट्टी ले जाने लगे। ऐसे ही क्रम में एक किसान को मिट्टी की तह मे दबा लकड़ी का यह स्तंभ मिला उसने उसे बाहर निकाल कर छोड़ दिया। सैंकड़ों वर्षों से जल व कीचड़ में पड़े रहे स्तंभ का संपर्क जब धूप से हुआ तब सिकुड़ने की प्रक्रिया में लकड़ी की चिपलियां टूट कर अलग होने लगी , ये चिपली अपने साथ उन अक्षरों को भी लेती गई जो काष्ठ की सतह पर उत्कीर्ण थे। ब्राह्मी लिपि और प्राकृत भाषा के लेख को साधारण किसान क्या पढ़ पाता। महत्वपूर्ण काष्ठ स्तंभ के लेख पूरी तरह नष्ट हो गये होते मगर विधाता को यह मंजूर नहीं था। छत्तीसगढ़ का यह गौरव स्तंभ नष्ट न हो जाय यह ईश्वरीय इच्छा थी। पंडित लक्ष्मी प्रसाद उपाध्याय की नजर उस स्तंभ पर पड़ी और उन्होंने काष्ठ लेख की यादृश्य नकल उतार ली। लक्ष्मी प्रसाद ब्राह्मी लिपि के ज्ञाता नहीं थे मगर उन्होंने इस ढंग से लेख की नकल निकाली की विद्वान अचभित रह गया यादृश नकल इतना तादृश था कि विद्वानों को कोई परेशानी नहीं हुई। पं. हीरानंद शास्त्री ने इसे प्रमाणित माना और ए.इ. के ग्रंथ में इसे छपवा दिया। छत्तीसगढ़ का गौरव स्तंभ किरारी का काष्ठ स्तंभ सिध्द हुआ। विद्वानों को इस काष्ठ लेख के सहारे स्थानीय इतिहास की विलुप्त कड़ियों को जोड़ने में काफी सहायता मिली।

पं. लक्ष्मी प्रसाद उपाध्याय ने घटना स्थल से ही जो नकल उतारी थी उसमें कुल 349 अक्षर थे। काष्ठ स्तंभ प्राप्ति की सूचना उच्चाधिकारियों दो दी गई। प्राथमिक निर्देश मिला कि काष्ठ स्तंभ को पानी में ही डूबाकर रखा जाय। निर्देश का पालन किया गया मगर तब तक काफी नुकसान हो चुका था। काष्ठ स्तंभ का रासायनिक उपचार किया गया उसे सुरक्षित रखने का प्रयास किया गया मगर तब तक काष्ठ स्तंभ की चिपलियां अनेक स्थानों से निकल कर गिर चुकी थी। चिपलियों के साथ लेख के अक्षर भी नष्ट हो गए। स्तंभ को नागपुर स्थित केन्द्रीय संग्रहालय में पहुंचाया गया वहां स्तंभ के ऊपरी भाग को जो कलश नुमा था काटकर प्रदर्शन हेतु अलग रखा गया। यह ऊपरी भाग महंत घासीदास स्मारक संग्रहालय रायपुर में सुरक्षित है। इस काष्ठ स्तंभ की पूरी ऊंचाई 13 फुट 9 इंच थी। अर्थात लगभग 320 से.मी. ) स्तंभ बीजा – साल नामक लकड़ी से बना था। ई. की दूसरी शताब्दी का यह स्तंभ है। इससे स्पष्ट होता है तत्कालिन प्रशासन ने इस स्तंभ का रासायनिक उपचार करवाया था और तब उसे तालाब के मध्य लगाया गया था। छत्तीसगढ़ में ऐसा रसायन था जिसके माध्यम से लकड़ी को जल में सड़ने से बचाया जा सके। स्मरणीय है कि सिन्धु घाटी की सभ्यता के लोगों को ऐसा रसायन ज्ञात था जिसका इस्तेमाल करने से दीवाल पर काई नहीं जमता था वृहदाकार स्नानागार में काई का कोई प्रमाण नहीं मिला है। छत्तीसगढ़ के लोगों को उस रसायन का ज्ञान था जो लकड़ी को जल के सतत संपर्क में

रहने के बावजूद उसे सड़ने से बचा सके। काष्ठ स्तंभ लेख के अनेक अक्षर नष्ट हो गये हैं। 349 अक्षरों में से केवल 20-22 अक्षर ही बचे हुए है।

इस काष्ठ स्तंभ में ब्राह्मी लिपि में अनेक पदनाम खुदे हुए हैं ये पदनाम इस बात के प्रमाण है कि तत्कालीन छत्तीसगढ़ का प्रशासन उच्च कोटि का था। किरारी ग्राम के हीराबंध तालाब में प्राप्त काष्ठ स्तंभ पर जो लेख ब्राह्मी लिपि में खुदा था उसका देवनागरी लिपि में रूपांतरण इस प्रकार है -

पंक्ति 1- नगर रखिनो वीर पालित चिरगहिके सेनापति
देव नमदेयाधि -- ग -- णौतावसवहथि
बमदेयिकम स पिटल .. इ- इसा- इ
इ -- सा -- इ. -- सा -- आ -- नो भटाय
केसब विठिद कामिक -- तते साविड़ निमित्त

पंक्ति -2 प्रतिहार खिपत्ति गणक नाग हेअसि गाहपतिय
धरिक भण्डारिक असाधिय वै हाथाधि आर हथारोहे
आसारोहे देवथयक पादमूलिक रथिक सिसार खखिमल
बुटनमक तभक महानासिक कुहुड़वत

पंक्ति -3 हाथिवक यमाश्रिक धावक सगन्धके गोमण्डिलिक
यान सालायुध धरिके दलिअखेम्ह पल विठिद
बालिके अवस कारक सध रदाप देअक वदि
केसव नाशो वचरे अनु-- यिनोदुनुवृत्त लेहहारके
पेटस पायुत साव कुलपुत्रक कुल पुत्र मनु सेनापति

पंक्ति -4 नु--सलिनम---बु-- हेसर महसेनानी सिधराज
--कुद्र--पुतस पिजत-- रपयति गये
पुवरठि--कवयु-से-कुमारो--ड- नायक

पंक्ति -5 भाययु र पा -- र - उन पुनविया -- म

महाकोशल हिस्टारिकल सोसायटी पेपर्स के ग्रंथ 2 में पं. लोचन प्रसाद पाण्डे ने उपरोक्त रूपांतरण पेश किया था। किरारी काष्ठ स्तंभ का मूल पाठ लगभग नहीं मिलता। पांडे जी की उपरोक्त प्रस्तुति इतिहास की धरोहर है। काष्ठ स्तंभ में अनेक पद नाम एवं नाम

दिये हुए हैं। स्तंभ लेख के अनेक अंश नष्ट हो गए हैं। अतः कुछ महत्वपूर्ण पदनाम एवं नाम नहीं मिलते हैं। दुर्भाग्यवश राजा का नाम भी नहीं मिला। जिन बड़े पदाधिकारियों के नाम पदनाम मिले हैं उससे स्पष्ट होता है कि राजा महापराक्रमी और महाराजाधिराज रहा होगा।

नगर रखिनो (नगर रक्षक), सेनापति, प्रतिहार (द्वारपाल), गणक (खजांची), गाहपातिय (अग्नि रक्षक), भाण्डागारिक (भंडारी), पादमूलक (मंदिर रक्षक), रथिक (सारथी), महानासिक (भोजनालय प्रबंधक), धावक (संदेश वाहक), सौगंधक (इत्रों का परीक्षक), गोमाइलिक (गौ व पशु व्यवस्थापक ) यान सतायुध धरिक (रथो व आयुधों का रक्षक), लेहवारक (डाक दरोगा ),कुल पुत्रक (इंजीनियर), हाथोराह (गज रक्षक), अश्वारोह (अधीक्षक घुड़साला), महासेनानी (प्रधान सेनापति) । उपरोक्त पदनाम काष्ठ स्तंभ लेख में मिलते हैं। ऐसा प्रतीत होता है अंतिम पंक्ति में राजाधिराज का नाम रहा होगा जो नष्ट हो गया। पदाधिकारी के नामों का क्रम नीचे से ऊपर गया प्रतीत होता है सबसे अंत में महासेनापति का पदनाम दर्शाता है कि इसके पश्चात महारजाधिराज का नाम रहा होगा।

स्तंभ लेख के ये पदनाम दर्शाते हैं कि इतने बड़े –बड़े पदाधिकारयों को रखने वाला राजा निश्चित ही महाराजा रहा होगा। ई. की दूसरी शताब्दी भारतीय इतिहास में सातवाहन काल के नाम से जाना जाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि कोई ब्राह्मण महाराजा रहा होगा। सातवाहन ब्राह्मण थे अतः उनके द्वारा कोई ब्राह्मण महाराजा ही इस विशाल भूखण्ड पर राज करता रहा होगा।

किरारी का काष्ठ स्तंभ तालाब के मध्य क्यों गाड़ा गया था इसके बारे में निश्चित रूप से जानकारी नहीं मिलती। संभावना व्यक्त की गयी है कि या तो यह तालाबों के मध्य गाड़े जाने वाला सामान्य स्तंभ था या वाजपेय यज्ञ के पश्चात तालाब के मध्य इसे स्थापित किया गया। सामान्य स्तंभ में पदाधिकारियों के नाम नहीं रहते, विशेष अवसरों पर जो स्तंभ स्थापित किये जाते हैं उसी पर इस तरह से नाम उत्कीर्ण कराये जाते हैं।

किरारी का काष्ठ स्तंभ छत्तीसगढ़ का गौरव स्तंभ है। इस स्तंभ और स्तंभ लेख के आधार पर दूसरी शताब्दी के छत्तीसगढ़ के गौरव का अभिज्ञान होता है। बड़े –बड़े पदाधिकारी रखने वाला महाराजा निश्चित रूप से परम शक्तिशाली शासक रहा होगा। छत्तीसगढ़ भारतीय इतिहास की मूलधारा से दूर नहीं था । अनेक तथ्यों व तर्कों से यह प्रमाणित होता है किरारी का काष्ठ स्तंभ छत्तीसगढ़ का गौरव स्तंभ है।

--00--

## अध्याय -2
## मुरिया गोटुल
# *कल आज और कल*

मध्यप्रदेश के सेड्युल कास्ट, सेडयुल ट्राईब, आर्डर ( संशोधित नियम ) 1976 दिनांक 18 सितम्बर के अनुसार सेडयुल ट्राइब के क्रमांक 16 पर **गोंड** शीर्षक अन्तर्गत माड़िया , बायसन हार्न माड़िया, दड़ामी माड़िया, धुर्वा, दोरला, हिल माड़िया, मुरिया शामिल है ।[1]

क्षेत्रफल की दृष्टि से विस्तृत मगर जनसंख्या की दृष्टि से विरल, यह अंचल एक साथ विभिन्न विषय शास्त्रियों को अपनी ओर आकर्षित करता है । नृतत्व शास्त्री समाज शास्त्री भूगर्भ- शास्त्री, भूगोल शास्त्री के साथ -साथ यह इतिहास वेताओं को भी अपनी ओर आकर्षित करता है । सभी को अध्ययन अन्वेषण के पर्याप्त आयाम प्रदान करने वाला यह आदिवासी बाहुल्य अंचल चर्चित व वर्णित रहा है ।

वर्तमान बस्तर जिले के नारायणपुर तहसील का कुल क्षेत्रफल 3140 वर्ग किलोमीटर है । जनसंख्या 1,97,074 (1991)[2] अन्तागढ़ और कोण्डा गांव तहसील मे निवास करने वाली मुरिया जनजाति पिछले पच्चास वर्षो से शोध व अनुसंधान का केन्द्र बना हुआ है । मुरियों के बारे में सी ग्लासफर्ड ने अपने रिपोर्ट में लिखा है - जगदलपुर के चारों ओर पश्चिम में नागाटोका से जैपुर रियासत की सीमा तक तथा सीतापुर से 30-40 मील इन्द्रावती के उत्तर में सर्वाधिक कृषि भूमि में मुरिया लोंगों का निवास है । ये चतुर कृषक हैं, इनके गांव प्रायः साफ सुथरे और आरामप्रद होते हैं । [3]

1921 की जनगणना के अनुसार मुरियों की जनसंख्या 1,24,993थी, तथा 1961 की जनगणना के अनुसार उनकी जनसंख्या 3,10,675 थी । [4]

1947 में वेरियर एल्विन - लिखित वृहादाकार ग्रंथ द मुरिया एण्ड देयर घोटुल ने न केवल भारत के वरन विश्व के समाज शास्त्रियों का ध्यान घोटुल नामक मुरिया संस्था की ओर आकृष्ट किया । प्रस्तुत लेख के प्रारंभ में ही यह स्पष्ट कर देना समीचीन होगा कि मुरियों केजिस संस्था के बारे में इतना कुछ लिखा गया है । उस संस्था का सही नाम घोटुल नहीं है । यह संयुक्तगौंडी शब्द गो +टुल इन दो शब्द के मेल से बना हुआ है, गो माने गोंगा अर्थात दुःख और क्लेष निवारण शक्ति जिसे विद्या कहा जाता है और टुल माने ठिया या

---

**आभार-** डॉ. विजय कुमार बघेल ,सहा. प्राध्यापक , शास. स्नातकोत्तर महा. जगदलपुर का सहयोग इस लेख के लिए मिला ।

ठाना जिसे स्थल कहा जाता है। इस तरह गोटुल का अर्थ गोगा स्थल अर्थात विद्या स्थल होता है।[5]

यद्यपि भारत व विश्व की कुछ अन्य जातियों व स्थलों में युवा -गृहों की स्थिति प्रमाणित होती है लेकिन उनका उद्देश्य अत्यन्त सीमित है।

मुरिया जनजातिकी संस्था घोटुल सामाजिक और धार्मिक जीवन का एक केन्द्र है और इसीलिये बस्तर का घोटुल (गोटुल ) विश्व का सर्वाधिक विकसित और सावधानी पूर्वक संगठित संस्था है। मुरिया अंचल में पारंपरिक रुप से विद्यमान गोटुल संस्था का इतिहास बहुत पुराना है, बस्तर अंचल में मुरिया जनजातियों के इतिहास से अविछिन्न रूप से जुड़ा हुआ - यह इतिहास है। जातियों का इतिहास उस ढंग से प्रस्तुत नहीं किया जा सकताहै जैसा राजनितिक इतिहास। मुरिया अंचल में पारंपरिक रूप से वर्णित मुर दिन चो मुरिया राजा यहा आभास दिलाता है कि मुरिया इस अंचल में प्रारंभ से ही निवास करते आ रहे है, त्रेतायुगीन राम के काल में भी यह जाति विद्यमान थी। पररंपरिक लोक कथा सत्यांश रखती है, यह निर्विवाद है।

युवा गृह अपने प्रकार के अनुसार विभिन्न उद्देश्यों की परिपूर्ति के लिये स्थापित किये गये थे। गोटुल की उत्पति के संदर्भ में विश्व कर्मा अपने विचार व्यक्त करती हैं कि - ऐसा प्रतीत होता है, अपने परिवार जनों की सुरक्षित रखने के उद्देश्य से कुछ लोंगों के द्वारा रात्रि जागरण आवश्यक था। संभवतः उसीआग जलाना, हंसी मजाक तथा आमोद प्रमोद का संयोग, इस उद्देश्य के साथ अच्छी तरह बैठ जाता है। संभवतः इसी उददेश्य से युवा - गृहो की उत्पुत्ति हुई होगी।[7] जहां तक बस्तर का सवाल है, बस्तर में युवा गृह का जन्मदाता लिंगों को माना जाता है एल्विन का यह उद्धरण - जब लिंगों मरा तो लोगों ने उसकी याद में सर्वत्र घोटुल (गोटुल ) स्थापित किये जिससे उसकी आत्मा सुखी रहे।[8] सर्वेक्षण से यह गलत सिद्ध होता है। श्री कंगाली ने लिखा है वास्तव में लिंगों ने अपने जीवन काल में ही सेमल वृक्ष के नीचे बैठा कर मुरिया बालकों को धार्मिक व बौद्धिक शिक्षा दे कर गोटुल का प्रारंभ किया था।[9]

नारायणपुर अंचल में लिंगों से संबंधित जो जनश्रुति प्रचलित है उसके अनुसार लिंगों के छह और भाई थे, लिंगों सबसे छोटा था, वे सब एक ही मकान में साथ-साथ रहते थे। छह बड़े भाईयों का जब विवाह हो गया तब लिंगों उनसे पृथक रहने लगा। यह आवश्यक था कि सबसे छोटा अविवाहित भाई अपने विवाहित भाईयों के दाम्पत्य संबंधों को लैगिक संबंधो को न जाने, न देखे। लिगों का पृथक मकान डिण्डामहल या अविवाहितो

का महल ...लाया। लिंगों का काल निर्धारण नहीं किया जा सकता है, लिंगों प्रकरण ऐतिहासिक कम, पारंपरिक अधिक है। सच्चाई यही है कि महान लिंगों, महान संगठक, महान संगीतकारऔर महान समाज सुधारक था।

मुरिया अंचल में सर्वेक्षण से गोटुल संस्था के उद्देश्यों के बारे में अनेक मत मतान्तर मिलते है जो एक दूसरे के पूरक है। मुरिया जनजाति में गोटुल संस्था लोक प्रिय थी। लोकप्रिय है और लोकप्रिय रहेगी, क्योकि जिन सामाजिक उद्देश्यों की पूर्ति हेतु जिन सामाजिक मूल्यों को बनाये रखने के लिये यह स्थापित थी उन उद्देश्यों की पूर्ति के लिये अभी भी उनका अस्तित्व बना रहना आवश्यक है। गोटुल संस्था की स्थापना जिन उद्देश्यों से की गई थी, वे थे :-

**1 बच्चो को यौन संबंधो की जानकारी से पृथक रखना :-**

बच्चो को माता-पिता के संबंध या यौन संबंध से दूर रखना रहा है।[10]

उपरोक्त कथन की पुष्टि -मुरिया समाज के प्रमुखों का बड़े बुर्जुगों के द्वारा आज भी की जाती है कहना है कि बच्चों की उपस्थिति में पति-पत्नि का एक साथ सोना, यौन संबंध होना पाप है, इसलिये बच्चा जब थोड़ा समझदार हो जाता है, तो उसे सोने के लिये गोटुल भेज दिया जाता है।

**2. बच्चों को उचित शिक्षा दिलाना -**

गोडी गीत में नामकरण के अवसर पर सियानी महिलाएं बच्चे के मां-बाप को उपदेश देती है -

लोंदा लेका उन्दी खाण्डू मंता।
मानवता जीवा पुटसी वायता ॥
मति, मोदूर कमोक धमुक चोलता।
मुन्सार सगा गोटुल ते ने आयता ॥
परोल मून्द सावरी नोरू कान्डाल।
सगा गोटुल ने वाटसी सियाना ॥ [11]

अर्थात - तुम्हारा यह बच्चा जो लगभग एक माह का है, अभी केवल मांस का एक पिण्ड है। उसकी परवरिश के लिये उसे उचित शिक्षा देने के लिए तीन वर्ष के बाद उसे गोटुल अवश्य भेजना।

**3. सेवा भाव जागृत करना -**

गोटुल की स्थापना का यह भी एक प्रमुख उद्देश्य है, इस संदर्भ में गंगाले अपने विचार व्यक्त करते हैं कि गोटुल के सह जीवन से वह सेवा मंत्र का अधिष्ठाता बन जाता है,

इसके दिलों - दिमाग में सेवाभाव जागृत हो कर वह सर्व कल्याणवादी बन जाता है ।[12] बस्तर के जन जातीय जीवन की धड़कन स्पंदन है घोटुल। यह वह समन्वयकारी संस्था है जो केवल वनवासियों के सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को सबक बनाती है बल्कि समाज और व्यक्तिगत उन्नति का सिंह द्वार भी खोलती है ।

**4. सामाजिकता की शिक्षा देना -**

ऐसी सामाजिकता यहां एक सबके लिए है, सब एक के लिये है । मुरिया घोटुल एक ऐसी संस्था होती है, जहां मुरिया युवक- युवतियां भावी जीवन के लिए तैयार होते हैं । वे यहां एक साथ रहकर, एक दूसरे की भावनाओं विश्वासों एवं विचार धाराओं को समझने का सुअवसर प्राप्त करते हैं । यहीं इन्हें अपने परम्परागत सांस्कृतिक घटकों एवं जीवन मूल्यों का प्रीशिक्षण व्यवहारिक रूप से दिया जाता है ।[14]

**5. जीवन साथी चुनने में सहायक -**

मुरिया समाज में गोटुल संस्था की उपादेयता इस संदर्भ में उल्लेखनीय है कि यह वैवाहिक संबंध के पूर्व युवा युवतियों का आपस में दूसरे को समझने में सहायक होती है। इस समाज में ममेरे फुफेरे भाई बहनों में विवाह की प्राथमिकता होती है, ऐसी स्थिति में अधिकांश मामलों में पति पत्नी के रूप में जीवन यापन करेगा, यह भी स्पष्ट रहता है। एल्विन ने संभवतः इसी को भ्रमवंश जोड़ीदार का नाम देकर और आकड़े देकर यह प्रतिपादित किया है कि दो हजार विवाहित पुरूषों का सर्वेक्षण करने से ज्ञात हुआ कि सात सौ बीस पुरूष जोड़ीदार घोटुल में अपनी पत्नियों से पूर्व परिचित रहे हैं ।[15]

यहां उल्लेख कर देना आवश्यक समझता हूं कि बस्तर का मुरिया गोटुल यौन शिक्षा का वैसा केन्द्र नहीं है जैसे एल्विन व अन्य लेखों ने वर्णित किया है गोटुल के एक प्रमुख पदाधिकारी माझी ने दृढ़तापूर्वक यौन शिक्षा केन्द्र के रूप में गोटुल का चित्रित किये जाने का विरोध किया, उसने कहा मेरे अपने सगे भाई बहन इस गोटुल में रोज सोने जाते हैं, उनकी उपस्थिति में क्या मैं किसी लड़की के साथ यौनाचार कर सकता हूं ।[16]

**आज का गोटुल -**

परिवर्तन प्रकृति का नियम है, परिवर्तन की प्रक्रिया व गति में अन्तर हो सकता है मगर ऐतिहासिक सच्चाई यही है कि परिवर्तन एक सतत प्रक्रिया का नाम है ।

आदिवासी अंचल में परिवर्तन की प्रक्रिया बहुत धीमी रहती है, परंपरागत आस्थाओं, संस्थाओं व विश्वासों को आदिवासी सहज ही छोड़ने को तैयार नहीं होता। गोटुल को अच्छी तरह से समझे बुझे बिना उसे आउट डेटेण्ड संस्था समझकर इस संस्था का समाप्त करने का प्रयास किया जा रहा है । यह प्रयास निंदनीय है इस प्रचार पर रोक

लगना आवश्यक है। नारायणपुर अंचलके कुछ गांव ऐसे हैं, जहां इस प्रकार के दुष्प्रयास, दुष्प्रचार के बावजूद मुरिया गोटुल विरोधियों के छाती पर मूंग दलते विद्यमान है। बाहरी लोगों की आंख की किरकिरी बना हुआ है।

शोध पत्र के लेखकों ने स्वंय इन अंचलों का दौरा कर प्राथमिक स्त्रोत से तथ्य संकलित किया है। मुरिया जनजाति अपने गोटुल को अरने **गौर के सिंग** जैसे सुन्दर और मूल्यवान और **उड़द की दाल** जैसा प्रिय बतलाते हैं, नारायणपुर तहसील मुख्यालय से दो किलोमीटर की दूरी में स्थित ग्राम सुंलेगा में गोटुल अपने पुरातन अवस्था में कायम है और उसका प्रयोग नियमित रूप से मुरिया युवक करते हैं। सड़कों शासकीय कर्मचारियों व अधिकारियों के अंचल में पहुंचने के बावजूद गोटुलों का अस्तित्व विद्यमान है।

गोटुल के अस्तित्व के प्रश्न पर एक उच्च स्तरी सभा तत्कालीन बस्तर जिलाध्यक्ष श्री आर.व्ही पी नरोन्हा की उपस्थिति में सन् 1952-53 में आयोजित हुई थी। जिसमें तीव्र वाद विवाद के पश्चात इस निष्कर्ष पर पहुंच गया था कि मांझी मुखिया अपने गावों में सभा कर पक्ष विपक्ष में निर्णय ले कि गोटुल की वर्तमान स्थिति में क्या और कितना परिवर्तन किया जाए।[17]

सन् 1952-53 के पश्चात विभिन्न मुरिया गावों में गोटुल के प्रश्न पर बैठकें आयोजित हुई, इस प्रश्न पर जनतरी 1992 में बाघबेड़ा के परगना मांझी श्री सोनूरामे वं दुकारू के नेतृत्व में ग्राम रेमावंड में भूमकाली बैठक हुई। इस बैठक में निर्णय लिया गया कि चेलिक मोटियारिन (युवक-युवती) गोटुल में रात को अपने दैनिक गतिविधियों के पश्चात युवतियां अपने-अपने घर सोने के लिये चली जाए और युवक चाहें तो गोटुल में ही सो जाए। उपरोक्त निर्णयानुसार आस पास के गांवों के गोटुल के सदस्य आंशिक रुप से पालन कर रहे हैं किन्तु पूर्ण रूपेण नहीं।[18]

इस प्रकार से मुरिया गोटुल अनेक उतार चढ़ाव के बावजूद अपने मुलरूप को बनाये रखने में सफल रहा है। गोटुल विहिन मुरिया समाज या गांवकी कल्पना नहीं की जा सकती, रोटी कपड़ा और मकान के पश्चात गोटुल ही मुरियों की अनिवार्य आवश्यकता है।

## संदर्भ ग्रंथ


(1) सेन्सस ऑफ इंडिया 1981 पार्ट 13 ए

(2) उपरोक्त

(3) ग्लास फर्ड सी. रिपोर्ट पैरा 80-81

(4) सेन्सस रिपोर्ट 1961

(5) गंगाले चन्द्र लेखा- लेख पहांदी
कुवार लिंगो का गोटुल तत्व ज्ञान- गोडवाना
सगा जनवरी 1987 पृ.5
(6) एल्विन वेरियर- मुरिया एण्ड देयर घोटुल भूमिका पृ. 7
(7) विश्वकर्मा सुचित्रा जन जातीय युवा गृह के बदलते प्रतिमान मानव जून 1989 पृ. 34
(8) एल्विन वेरियर- द मुरिया एण्ड देयर घोटुल पृ -253
(9) कंगाली मोतीराम गोंडी सगा देवों के माता काली कंकाली लेख गोडवाना सगा अगस्त 1986 , पृ.13
(10) उपाध्याय विजय शंकर एवं शर्मा विजय प्रकाश भारत में जनजातीय संस्कृति पृ. - 118
(11) गंगाले चन्द्रलेखा लेख पहांदी कुमार लिंगों का गोटुल तत्व ज्ञान गोंडवाना सगा जनवरी 1987- पृ. 7
(12) पूर्वोक्त पृ-7
(13) कुमार चन्द्र घोटुल एक जीवंत सामाजिक संस्था नवभास्कर दीपावली विशेषांक 1990- पृ. 85
(14) यदु श्रीमती शान्ति मुरिया नारी पृ. 15
(15) एल्विन वेरियर- द मुरिया एण्ड देयर घोटुल पृ. 334
(16) ग्राम पुन्डेर गोटुल पारा के गोटुल प्रमुख पदाधिकारी मांझी ने जानकारी दी तिथि 5 अक्टूबर 1991
(17) कचलाम चमरा राम सरपंच शिक्षा 5 वीं उम्र 45 वर्ष ग्राम बेनूर से प्राप्त जानकारी तिथि 25.2.92
(17 ए) उल्लेखनीय है कि श्री आर.सी. व्ही पी नरोंहना 16.1. 49 से 21.1.55 तक बस्तर के जिलाध्यक्ष थे।

-00-

# अध्याय-3

## बस्तर नरेश प्रवीरचन्द्र भंजदेव आपार लोकप्रियता व अगाध श्रद्धा के केन्द्र

इतिहास के सहस्त्रों वर्षो के काल फलक पर विहंगम दृष्टि न डालने वाले जिज्ञासु यह देखकर अवाक रह जाते है कि ऐसे सैकड़ो नायक हैं जिन्हें इतिहास में उनका न्यायोचित स्थान नही मिल पाया हैं। छत्तीसगढ़ के इतिहास के संदर्भ में उपरोक्त टिप्पणी पर विचार करने से बस्तर के राजा प्रवीर चन्द्र भंज देव, लाल कालिन्दर सिंह, आदिवासी नायक गुन्डाधुर ऐसे ही पात्र मिलते हैं। क्षेत्रफल की दृष्टि से विराट मगर जनसंख्या की दृष्टि से विरल बस्तर अंचल का गौरवशाली इतिहास रहा हैं चौदहवी शताब्दी के प्रारंभ में वारंगल ( आन्ध्रप्रदेश स्थित ) से काकतीय राज कुमारअन्नमदेव बस्तर अंचल में आए और काकतीय राज सत्ता की स्थापना किए। इसी काकतीय परंपरा की एक कड़ी राजा प्रवीर चन्द्र भंज देव थे। माता की ओर से काकतीय तथा पिता की ओर से भंजदेव वंश के प्रवीर अपने नाम के साथ दोनों वंशों का उल्लेख करते थे। प्रवीर चन्द्र भंजदेव काकतीय ऐसा अपने को लिखते थे ।

प्रवीर का मूल्यांकन न तो उनके जीवन काल में हुआ और न ही मरने के पश्चात लाखो आदिवासी जिन्हे ईश्वर जैसा मानते थे उस प्रवीर के नाम पर बस्तर में न तो कोई भवन हैं, विद्यालय महाविद्यालय , बाजार , सड़क, अस्पताल कुछ भी उनके नाम पर नहीं हैं लगता हैं शासक प्रवीर का नाम आदिवासी विस्मृत कर जाय इस योजना को लेकर चल रहे हैं। व्यक्ति समूह कुछ भी चाहें मगर इतिहास अनदेखा नही कर सकता मूल्यांकन में समय भले ही लग जाय मगर देर आये दुरूस्त आये की स्थिति बनती ही हैं। 25 जून 1929 ई को दार्ज लिंग में पैदा हुए प्रवीर को अपनी माता प्रपुत्र कुमारी देवी की लोकप्रियता का धरातल मिला। माता की आकस्मिक मृत्य के पश्चात प्रवीर का औपचारिक राज तिलक लंदन में हुआ। भारत लौटने पर 24 अप्रैल 1936 ई को जगदलपुर (राजधानी) में राज्याभिषेक हुआ मगर प्रवीर की अल्पवयस्कता के कारण

राजकाज एक समिति चलाती रही। वयस्क होने पर जुलाई 1947 ई में प्रवीर को राज्याधिकार मिला मगर अगस्त 1947 में देश की आजादी के पश्चात राजा महाराजाओं का अस्तित्व प्रश्न चिन्ह के दायरे में आ गया। यह वह काल था जब संपूर्ण भारत के राजा महाराजे अपने भविष्य को लेकर चिन्तित रहे थे। प्रवीर नें भी अन्य राजा महाराजाओं को भांति चिन्तन मनन कर भारत संघ में बस्तर को विलीन करने का निश्चिय किया। जनवरी 1948 को छत्तीसगढ़ के रियासतो का विलीन करण होना था। प्रवीर ने इस तिथि से पूर्व अपनी आदिवासी प्रजा को स्थिति से अवगत कराने के उद्देश्य से एक पाम्पलेट वितरीत किया बस्तर की संपर्क राजा हलवी में यह प्रसारित प्रकाशित हुआ। ''मयादार रैय्यतमन अर्थात मेरी प्यारी प्रजा संबोधन से यह प्रारंभ होता हैं। तुमचो मया बस्तर चो मया आरू आमचो मातृभूमि चो मया में मैं बस्तर राज के हिन्दुस्तान चो सरदार के सौपुन दिले '' अर्थात अपनी मातृभूमि के प्रति, बस्तर राज्य के प्रति, और आप लोगों के प्रति जो प्रेम मेरे हृदय मे रहा हैं वही प्रेम के खातिर मैने बस्तर राज्य को भारत की सरकार के सुपुर्द कर दिया हैं बस्तर व उसके मूल निवासियों की भलाई को मद्देनजर रखते हुए प्रवीर ने बस्तर का विलीनी करण भारत संघ में किया।

1 जनवरी 1948 को जो विलीनीकरण हुआ वह प्रवीर प्रकरण की समाप्ति नही थी वरन एक नए अभ्याय का श्री गणेश था। इस नए अभ्याय में प्रवीर शासक दल से कभी निकट तो कभी अतिदूर रहे। जब -जब अति दूर हुए तब तब प्रवीर पर विपत्तियों का पहाड़ टूटा । अपव्ययी, आदिवासियों का शोषक अपने स्वार्थ के लिए आदिवासियों का उपयोग करने वाला ,पागल तथा इसी प्रकार के अन्य आरोप उन पर लगाए जाते थे। 1947 से 1966 ई तक प्रवीर बस्तर के ऐसे सख्स थे जिनके इशारे पर बस्तर की शांति या अशांति निर्भर करती थी। बस्तर के कलेक्टर देवेन्द्र नाथ से प्रवीर ने स्पष्ट शब्दों में कहा था - **पूर्व बस्तर रियासत का प्रशासन मेरी दया दृष्टि पर चल रहा है** यदि वे चाहें तो किसी भी दिन इसको ठप्प कर सकते हैं। वास्तव में प्रवीर की यह कोरी धमकी नही थी।

प्रशासक के लिए प्रशासन क्षेत्र की परंपराओं का सार्थक ज्ञान अपेक्षित होता हैं मगर बस्तर के साथ ऐसा नही हुआ। बस्तर की आदिवासी परंपरा अपने **राजा को दैवी** मानता हैं। राजा की राज्य से अनुपस्थिति अपशकुन माना जाता है, वन, वन्य प्राणी , वनवासी के संरक्षक के रूप में राजा को माना जाता है। बस्तर इतिहास में अनेक अवसर

ऐसे आए जब राजा की संभावित अनुपस्थिति ने विद्रोहों को जन्म दिया 1876 ई. में ऐसा ही हुआ था इस परंपरा की अंतिम घटना 1961 में लोहंडीगुड़ा गोली कांड के रूप में सामने आई जब प्रवीर को नरसिंह गढ़ जेल में रखा गया और प्रजा उन्हे तत्काल प्रस्तत करने की मांग लेकर आंदोलित हुई प्रशासन ने आंदोलन का उत्तर गोलियों से दिया 12 आदिवासी घटनास्थल पर मारे गए। अपने राजा के लिए, अपने प्रवीर के लिए बस्तर के आदिवासी मरने मारने पर उतावले रहते थे। आदिवासी ही प्रवीर की शक्ति थे। इन्ही की ताकत पर वे सरकार को धमकाते रहे थे। न्यायमूर्ति कन्हैया लाल पांडेय ने लिखा है- सत्ता विहीन हो जाने की पीड़ा निरन्तर प्रवीर के मन को मथती रही जिसका संकेत इससे मिलता है कि 1951 ई. में ही विद्रोह की बात उनके मन में थी। एक पत्र में उनके संबंध मं प्रचारित हुआ था कि वे कभी गद्दी हथियाने के इच्छुक हैं इससे ऐसा विद्रोह भड़क सकता था जैसा सन 1910 में भड़का था।

अजान बाहु प्रवीर एक साथ अनेक क्षेत्र में दखल रखते थे। आदिवासियों के मध्य देव तुल्य थे। इतिहास में रूचि थी। बस्तर इतिहास के अनेक पहलुओ को उजागर करने वाली उनकी पुस्तक **लोहंडीगुड़ा तरंगिणी** बस्तर राजवंश का इतिहास प्रस्तुत करता हैं। **आई प्रवीर आदिवासी गाड** प्रवीर की गर्वोक्ति के साथ -साथ बस्तर के भूगोल, भूगर्भ समाज, अर्थव्यस्था , इतिहास को प्रस्तुत करने में सफल रहा हैं। इलाहाबाद से प्रकाशित **सजनी** मासिक प्रत्रिका के संपादक नरसिह राम शुक्ल ने प्रवीर से भेंट कर उनके व बस्तर के संबंध में दो विशेषांक निकाले।

राजमहल गोलीकांड में प्रवीर के मारे जाने के समाचार से बस्तर को मानो सांप सूंघ गया। महात्मा गांधी की हत्या से जो सनसनाहट संपूर्ण भारत में फैली लगभग वही स्थिति बस्तर में प्रवीर की मुत्यु के समाचार से फैली। प्रवीर के लिए आज भी उनके पारिवारिक शमशानघाट में कोई समाधि नही बनी है। वह दिन दूर नही जब कोई बतलाने वाला नही होगा कि प्रवीर को कहां जलाया गया था। कहां अंतिम संस्कार किया गया था।

लोहंडीगुड़ा गोलीकांड और राजमहल गोलीकांड किसी भी सभ्य व सुसंस्कृत सरकार के लिए एक बदनुमा धब्बा है। के.एल. पांडे ने राजमहल में दूसरी बार गोली चालान को अनावश्यक बतलाया है । उल्लेखनीय है कि दूसरी बार गोली चलाने में ही

प्रवीर मारे गए थे।जीवित प्रवीर जितने महत्वपूर्ण थे मृतक प्रवीर उससे भी अधिक महत्वपूर्ण साबित हुए। विरोधी दल के लोगो ने भी प्रवीर के नाम से वोट बटोरे मगर उनकी सरकार आने पर उन्होने भी प्रवीर के लिए कुछ नही किया।

प्रवीर चन्द्र भंजदेव बस्तर इतिहास के ऐसे पात्र है जिनके साथ लाखो बस्तरिया भावुकता के साथ जुड़े है, आज भी बस्तर में **प्रवीर एक महानायक** के रूप में स्मरण किए जाते है। मर कर भीअमर रहने को चरितार्थ करता प्रवीर का अवसान अनेक जीवंत प्रश्नों को छोड़ गया हैं। बस्तर के राजनेता **पं. रविशंकर बाजपेयी** ने प्रवीर की मृत्यु पर कहा था प्रवीर चाहे पागल रहा हो आदिवासियों का शोषक रहा हो मगर किसी भी सरकार को यह हक नही मिलता कि वह उन्हे कुत्ते की भांति मरता देखे। राजा **नरेश चन्द्र सिंह** जो वर्षो म. प्र. सरकार के आदिम जाति कल्याण विभाग के मंत्री रहे। प्रवीर की मौत से दुखी थे एक राजा की मौत से दूसरे राजा का दुखी होना स्वाभाविक था।

प्रवीर राजा के रूप में **दंतेश्वरी माई के पुजारी** के रूप में एक जननायक के रूप में आधुनिक बस्तर के इतिहास में ऐसा स्थान बना गए है जिस तक पहुंचना किसी दूसरे के लिए असंभव हैं।

मध्यप्रदेश के तत्कालिन मुख्यमंत्री श्री द्वारिका प्रसाद मिश्र ने विधानसभा में प्रवीर - प्रकरण पर चर्चा करते कहा था - आज हमारे और आपके बीच **भारत की प्रभुसत्ता** का प्रश्न उठ खड़ा हुआ हैं। प्रभुसत्ता का प्रश्न अर्थात बड़ा कौन **बस्तर में प्रवीर की चलेगी या शासन की?** अप्रत्यक्ष रूप से द्वारिका प्रसाद मिश्र ने बस्तर में प्रवीर को शक्ति को रेखांकित कर दिया था।

-oo-

अध्याय -4

# छत्तीसगढ़ के साहित्यकार

# पं. शुकलाल प्रसाद पांडेय

छत्तीसगढ़ अंचल, साहित्यिक दृष्टि से मध्यप्रदेश का गौरव रहा हैं। इस अंचल में हिन्दी भाषा कों समृद्ध करने वाले अनेक साहित्यकार हुए हैं। पं. शुकलाल प्रसाद पांडेय उनमें से एक हैं। रायपुर जिले के सरसींवा नामक ग्राम के सारयुपारीण ब्राह्मण पं. शुकलाल प्रसाद पांडेय द्विवेदी युगीन साहित्यकार थे। मध्यप्रदेश के प्रारंभिक कवियो में आपकी गणना होती हैं हिन्दी काब्य शैलीके निर्माण की महती भूमिका आपने निभाई। काव्य ग्रंथों के अलावा आपने नाटक भी लिखे हैं। छत्तीसगढ़ी में भी काफी कुछ लिखा। शेक्सपियर के नाटक कामेडी आफ एरर्स का आपने **भूल भुलैया** के नाम से अनुवाद भी किया। हिन्दी के नाटक साहित्य में भूल भुलैय्या का महत्वपूर्ण स्थान हैं। मैथिली मंगल नामक एक सशक्त खंड काब्य भी आपने लिखा। संस्कृत के नैषध चरित्र का पद्य में अनुवाद किया हैं। अंग्रेजी हिन्दी, संस्कृत तथा छत्तीसगढ़ी पर आपकी पकड़ थी। हिन्दी खंड काब्य **छत्तीसगढ़ गौरव** ने पं. शुकलाल प्रसाद पांडेय को बुलन्दी पर पहुँचाया। सन् 1913 के सरस्वती के अंक में पांडेय जी की कविता **प्राचीन भारत वर्ष** प्रकाशित हुई। यह वह काल था जब अंग्रेजी दासता की बेड़ियों को तोड़ने के लिए आत्मबल बढ़ाने का उपक्रम चल रहा था। इस महायज्ञ में पांडे जी की एक आहुति के रूप में प्राचीन भारतवर्ष और छत्तीसगढ़ गौरव को देखा ज़ा सकता हैं। भारत का जागरण, क्षेत्रीय जागरण से ही संभव था। पांडे जी इसे मानते थे यही वजह हैं कि छत्तीसगढ़ गौरव के माध्यम से उन्होंने छत्तीसगढ़ को जागृत करने का प्रयास किया।

छत्तीसगढ़ गौरव की प्रशंसा करते हुए **पं. मुकुटधर पांडेय** ने लिखा हैं - इसमें छत्तीसगढ़ के इतिहास की श्रृंखला बद्ध झांकी देखने को मिलती हैं। प्राचीन काल में यह भू-भाग कितना प्राचुर्य पूर्ण था। यहां के निवासी कैसे मनस्वी और चरित्रवान थे। इसका प्रमाण पाया जाता हैं। छत्तीसगढ़ की **सामाजिक विशेषताओं का इसे दर्पण** कहा जा सकता हैं। इसकी गणना एक उच्चकोटि के आंचलिक साहित्य में की जा सकती हैं।

छत्तीसगढ़ गौरव में मंगलाचरण के रूप में छत्तीसगढ़ी में हमर देश नामक कविता हैं। पांडये जी ने लिखा हैं -

**ये हमर देस छत्तीसगढ़ आगु रहिस जगत सिरमौर**

**दविखन कौसल नाव रहिस है मुलुक मुलुक मां सोर**

छत्तीसगढ़ का प्रारंभिक इतिहास बतलाते हुए पांडेय जी नें छत्तीसगढ़ नामकरण के पीछे कारणीभूत तथ्य को बतलाया हैं -

**कहलाती थी पूर्व चेदि ही दक्षिण कौशल**
**गढ़ थे दृढ़ छत्तीस नृपों को यही महावल**
**इसीलिए तो नाम पड़ा छत्तिसगढ़ इसका।**

छत्तीसगढ़ की सीमा कहां से कहां तक मानी जाय इस पर आज भी मतैक्य नही हैं। पांडेय जी ने लिखा हैं -

**उत्तर दिशा में है बघेल भू करता चुम्बन**
**यमदिशि गोदावरी कर रही पद प्रक्षालन**
**पूर्व दिशा को ओर उड़ीसा गुणागार है**
**तथा उदार बिहार प्रांत करता बिहार है।**
**भंडारा, बालाघाट और चांदा, मंडला चतुर गण**
**पश्चिम में निशि दिन कर रहे आलिंगन हो मुदित मन**

सभ्यताएं नदियों के किनारे पनपी, छत्तीसगढ़ की जीवन दायिनी नदी महानदी हैं यहां के साहित्यकारों ने महानदी पर कुछ न कुछ अवश्य लिखा हैं और महानदी की महत्ता दर्शाया हैं। पांडेय जी नें लिखा हैं -

**भरकर तरूणाई वारि से उथल पुथल हो भा रही**
**यह महानदी चित्रोत्पला गंगा बहती जा रही**
**गाती , मुसुकाती नाचती और झुमती जा रही**
**हे महानदी ! तू सूर नदी की समता है पा रही**
**पहिले गंगादिक हो रही पापी पाप प्रणासिनी हैं।**
**हे महानदी ! तू भी बनी अब कलि में अघनाशिनी।**

छत्तीसगढ़ में निवास करने वाले ब्राह्मणों ( सरयूपारीण ) के बारे में पांडेय जी ने लिखा हैं -

**धर्मात्मा हरिभक्त जितेन्द्रिय पर उपकारी**
**यथा लाभ संतोष शील मुनिगण पथ चारी**
**निर्लोभी गत बैर ग्राम उपदेशक वन्दित**
**सदाचरण शांत तपस्वी सदगुण मण्डित**
**वाग्मी सुविवेकी नीतिरत गतामर्श साधक महा**

**छल कपट हीन औ दम्भगत ब्राह्मण बसते हैं यहां।**

पांडेय जी छत्तीसगढ़ में जन्में पले बढ़े। छत्तीसगढ़ का दर्पण कहा गया हैं- छत्तीसगढ़ गौरव को। पांडेय जी छत्तीसगढ़ी और बासी से प्रभावित थे। उन्होनें लिखा हैं -

**यो छत्तीसगढ़ियों के लिये प्रिय भाषा छत्तीसगढ़ी**<br>**ज्यों प्रिय लगती हैं सर्वदा वीर मराठो को कढ़ी**<br>**है बासी गुणराशि बड़ी वर है नही बलाय हैं यह**<br>**बासी बलनाशी नही छत्तीसगढ़ की चाय हैं।**

सरसीवां से 15 कि.मी. की दूरी पर सारंगढ़ नामक छोटा सा कस्बा स्थित हैं। पांडेय जी सारंगढ़ और उसके राजा जवाहिर सिंह से बहुत प्रभावित थे।उन्होने लिखा हैं -

**स्वर्ग खोजते आप, अन्य थल स्वर्ग नहीं हैं**<br>**सारंगढ़ नृप सौध जहां है स्वर्ग वहीं हैं।**

अपार छत्तीसगढ़, महाभाग छत्तीसगढ़ , छत्तीसगढ़ की विशेषता बतलाते हुए पांडेय जी नें लिखा - **भारत में छत्तीसगढ़ किसी प्रांत से कम नहीं** विचारक पांडेय जी नें काफी पहले यह लिख दिया कि पृथक छत्तीसगढ़ राज्य बन सकता हैं। ग्राम के निवास करने के कारण पांडेय जी खेत-खलिहान- किसान से प्रभावित थे। ग्रामीण व्यवस्था से अच्छ तरह परिचित होने के कारण उनकी लेखनी ने ग्राम दर्शन कराया है।

ग्राम -ग्राम में पूर्वकाल जो गुडी सदन था वही बना ग्रामीण पार्लियामेंट भवन था। अंग्रेज भारत शोषकों के लिए खुला था। भारतीय वस्त्र उद्योग की दुर्गति हुई। पहले गांव गांव में सूती कपड़े बनते थे। इसी को सुन्दर ढंग से लिखा गया है -

**थे सब ग्रामों के उस समय अगणित मेनचेस्टर यही**<br>**गोरे वणिकों की जेब में लाखों जाते थे नहीं।**

ग्राम की व्यवस्था अपमे में पूरी थी। पांडेय जी ने लिखा है -

**राजा था गौटिया, गोटनिन ही थी रानी।**<br>**ग्राम युवक थे सैन्य, गौटिया सुत सेनानी।**

भारतीय किसानों के बारे में लेखको ने बहुत कुछ लिखा है मगर पांडेय जी ने कृषकों को अतुलनीय बतलाया है -

**हे वन्दनीय कृषिकारगण, तुम भगवान समान हो**<br>**इस जगती तल पर बस तुम्ही खुद अपने उपमान हो।**<br>**हैं हुए हितैषी विश्वके मनुज अनेक जहान में।**<br>**पर तुमसे बढ़कर नहिं हुआ कोई मम अनुमान में।**

छत्तीसगढ़ गौव में अंचल के इतिहास के बारे में काफी जानकारी संग्रहित है। पांडेय जी ने श्रमपूर्वक यह संकलन कर अंचलके इतिहास को सहजने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इसके लिए क्षेत्र के इतिहास के अध्येता उनके आभारी हैं।

छत्तीसगढ़ में मराठा शासक बिम्बाजी भोसले के पश्चात सूवा शासन स्थापित हुआ। सूबेदारों के माध्यम से रतनपुर को राजधानी बनाकर मराठा- सरदारों ने शासन प्रारंभ किया। ये सूबेदार अधिक से अधिक शोषण करते थे -

**सूबाशाही रही तबाही शाही क्या ही**
**थी मनचाही एक तरह की नादिर शाही**
**सूबागण हित रहा न कोई अंकुशधारी**
**अतः निरंकुश रहे सभी वे स्वेच्छाचारी।**

छत्तीसगढ़ के गांवो में श्रम विभाजन की जो व्यवस्था है उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा शुकलाल प्रसाद पांडेय ने की हैं -

**होती है श्रम धन दान कृति मर्यादायुत सर्वथा**
**बलिहारी उसकी है रची जिसनें यह सुन्दर प्रथा।**

1886 ई में जन्में श्री पांडेय जी की कविताएँ स्वदेश बांधव, नागरी प्रचारक मनोरंजन हितकारिणी, सरस्वती तथा मर्यादा आदि प्रसिद्धि प्राप्त पत्रिकाओं में छपी। 2 जनवरी 1951 ई. को उनकी मृत्यु हुई। पांडेय जी को यह पीड़ा रही कि उन्होनें लिखा तो बहुत मगर पुस्तकाकार में कोई प्रस्तुत न हो सका। उनकी मृत्यु के पश्चात मध्यप्रदेश शासन साहित्य परिषद नें छत्तीसगढ़ गौरव का 1972 में प्रकाशन किया। पांडेय जी के उत्तराधिकारी पांडेय जी का रचना संसार पांडुलिपि के रूप मे लिए शासन तंत्र के दरवाजे खटखटाते रहे। आज भी उनके संपूर्ण साहित्य का प्रकाशन नही हुआ हैं।

छत्तीसगढ़ सरयूपारीण ब्राह्मण समाज के गौरव प. शुकलाल प्रसाद पांडेय ने छत्तीसगढ़ और यहां के ब्राह्मण समाज को गौरव दिलाया उसके लिए समाज उनका ऋृणि हैं।

*-00-*

## अध्याय -5

# बस्तर सलफी -महिमा

छत्तीसगढ़ के दक्षिण में स्थित बस्तर अंचल आदिवासी बहुल इलाका है। बस्तर अपनी अनेक विशेषताओं के कारण जाना जाता है। बस्तर की पहचान जिन उपलक्षकों से होती है उनमें माई दंतेश्वरी, गौरसिंग वाले माड़िया नर्तक, सलफी का पेड़, मुर्गा लड़ाई आदि है। सलफी का पेड़ बस्तर के आदिवासियों के लिए परमप्रिय मादक पेय है बाल वृद्ध युवक-युवती सभी इसके प्रेमी है। शेष भारत बस्तर को कीमती सागौन पेड़ों के लिए जानता है लेकिन आदिवासियों के लिए सागौन की उतनी महत्ता नहीं है जितनी सलफी के पेड़ की है। बस्तर का आदिवासी अपने पुत्र को विरासत के रूप में सलफी का पेड़ छोड़ना बेहतर समझता है। क्योंकि उसका अंक शास्त्र हजार दस हजार रुपयों से अधिक का नहीं है। सलफी का पेड़ आदिवासी के लिए अतिरिक्त आय का साधन है। सलफी बस्तर के आदिवासी के लिये अशर्फी है। शेष संसार अशर्फी की सुरक्षा के लिए जितना चिन्तित रहता है उससे कहीं अधिक चिन्तित बस्तर का आदिवासी अपने सलफी पेड़ की सुरक्षा के लिए रहता है।

सलफी का पेड़ नारियल प्रजाति का पेड़ होता है। हलबी भाषा में इसे सलफी रूख गोन्डी भाषा में गोर्गा मर्रा, अंग्रेजी में फिश टेल पाम ट्री कहा जाता है। वनस्पति शास्त्र की भाषा में करयोटा यूरेस के नाम से संसार जानता है। 39114 वर्ग कि.मी. के क्षेत्रफल के बस्तर अंचल में यह प्रायः सर्वत्र पाया जाता है। माड़िया का सीमित संसार है इसीलिए वे कहते हैं -

वालिया वाटो गोर्गा ऊले मामा ले अर्थात ओ मामा ! तुम जहां भी जाओंगे सलफी का पेड़ अवश्य पाओगे।

सलफी के पेड़ से सलफी नामक पेय पदार्थ की प्राप्ति होती है। छिन्द, ताड़ आदि पेड़ों से जैसे शराब या मादक पेय की प्राप्ति होती है उसी प्रकार सलफी पेड़ से होती है। सलफी से तैयार मादक पेय मिलता है। नई शाखा को काट कर बूंद बूंद रस एकत्र किया जाता है यही एकत्र रस मादक होता है। अपने संपूर्ण आकार में सलफी का पेड़ 80 फुट की ऊंचाई तक का होता है। इसकी पत्तियां मछली की पूंछ की आकृति का होता है इसीलिए शब्द दारिद्र वाली अंग्रेजी इसे फिश टेल पाम ट्री नाम देती है। लगभग 20 फुट तक लंबे पत्ते होते हैं जो कटिले होते हैं। बस्तर के आदिवासी इस सलफी को मादक पेय के रूप में शराब के रूप में प्रयुक्त करते हैं। सलफी को बस्तर के लोग उसी प्रकार प्रयुक्त करते हैं जैसे सभ्य संसार चाय का उपयोग करते हैं। कोई समय नहीं कोई स्थान वर्जित नहीं। विवाह का

आनंदोत्सव हो या प्रियजन के अंत्येष्टि का समय हो सलफी का दौर चलता है। सलफी यदि वर्जित है तो मात्र देव देवियों में चढ़ाने के लिए। बस्तर का आदिवासी देवदेवियों को महुआ की शराब ही चढ़ाता है। निजी जीवन में मित्रों के मध्य सलफी का प्रयोग हो सकता है धार्मिक अनुष्ठानों में नहीं। सुलभ होने के कारण सलफी लोकप्रिय है। कांकेर से कोन्टा तक और जगदलपुर से भोपालपटनम तक सभी तहसीलों में यह पेड़ पाया जाता है। आकर्षक सुन्दर पेड़ होने के कारण रायपुर भोपाल आदि स्थानो पर इस पेड़ को लगाया गया। पेड़ बढ़ा मगर रस की प्राप्ति नहीं हुई। भवनों की शोभा बढ़ी मगर मन की प्यास नहीं बुझी। बस्तर और उसके आसपास के भाग ही सलफी को वह वातावरण देते हैं जहां वह बढ़े व रस दें।

सलफी का पेड़ देव वरदान के रूप में स्वीकार किया गया है। सलफी पेड़ की उत्पत्ति के संबंध में अलग अलग विवरण मिलता है। एक वर्गकी धारणा है कि एक बार स्वर्ग से युवा युवतियों का एक समूह आनंद प्राप्ति के लिए स्नान व नृत्य का आनंद उठाने के लिए बस्तर के चिखली नामक ग्राम के पास अवतरित हुआ। स्नान व नृत्य का आनंदोपभोग करने के पश्चात स्वर्ग लौटने पर युवतियों को याद आया कि स्नान के समय उन्होंने कौड़ियोंक जो आभूषण उतारे थे वे धरा पर ही छूट गये हैं। स्वर्ग की देवियां कौड़ियों पर गुस्सा उतारी वहीं से शाप दिया किं पेड़ बन जाओ। शाप से उक्त सलफी के पेड़ में लच्छेदार फलों की लड़ियां एक नजर में कौड़ियों की लड़ियां ही लगती है। लटकते झूमर की शक्ल वाले फूलों का घेरा सिसोर के नाम से जाना जाता है। मन मोहक सिसोरा घरों व सार्वजनिक स्थानों को सजाने के काम में बस्तर के आदिवासियों के द्वारा प्रयुक्त होता है। नारायणपुर तहसील के रावघाट इलाके में सलफी के पेड़ अपेक्षाकृत अधिक संख्या में मिलते हैं।

एक दूसरी दंत कथा के अनुसार बस्तर के मूले नामक गांव में सात सलफी कन्याये पैदा हुई सातो एक ही नाल से बंधी थी। नाल को काट कर जमीन में जब गाड़ा गया तो सातों बहन गायब हो गई। मां नाल को गाड़ कर लौटी तो कन्याये नहीं मिली (मां के स्तन से दूध अपने आप गिरने लगा। समय के साथ मां के गिरे दूध जो नाल के गाड़े जाने का स्थान भी था, वहां एक पौधा अंकुरित हुआ बढ़ा और बढ़ता गया। दूध से सींचित यह पौधा दूध से उत्पन्न सदा दूध जैसा सफेद पेय देने वाला सलफी का पौधा हुआ। सलफी पेड़ की उत्पत्ति के संबंध में तथ्य कितना भी क्यों न ह यह सलफी की आकृति व स्वरूप की प्रकृति को समझाता है।

सलफी का पेड़ बीज से भी उत्पन्न होता है और कलम से भी पौधे को बहुत जतन से बढ़ाया जाता है चारो ओर से बांस व कांटों से उसे घेरा जाता है जिससे जानवर न खा सके। बेटे के जन्म के समय बाप सलफी का पौधा लगाता है। बेटा व पौधा साथ साथ बढ़ते हैं सलफी का पेड़ कब का है पूछने पर आदिवासी कहता है मेरे बेटे को जीतने साल हुए है उतने ही साल का यह पेड़ है। सलफी की रखवाली के लिए कभी कभी तो व्यक्ति उसी के पास झोपड़ी बनाकर रहने लगता है। सोलह सत्रह वर्ष के जतन से बढ़ाये पेड़ में जब फूल

वाली शाखा निकलती है तब आदिवासी परिवार के लिए आनंद का क्षण आता है। मादक पेय उसका पेय तो है ही, भोजन का विकल्प भी है आय का स्रोत भी है। एक रुपये गिलास के हिसाब से वह चालीस पचास गिलास सलफी बेचकर आयका अतिरिक्त स्रोत पाता है सलफी इसीलिए तो अशरफी है। सलफी एक संपत्ति है जो बंटवारे के समय एक कीमती वस्तु की भांति बांटा जाता है। फूलवाली शाखा को जब सलफी निकालने के लिए थोड़ा सा काटा जाता है तब उसके नीचे तुम्बा रखा जाता है इसी तुम्बे में बूंद बूंद रस एकत्र होता है ताजा रस मीठा होता है यह मीठा सलफी औषधि के रूप में पेट साफ करने के लिए प्रयुक्त होता है। पुराना सलफी रस थोड़ा सा तुम्बा में रखा जाता है फिर नया रस एकत्र किया जाता है। इससे सलफी में किण्वन होता है। थोड़ी सी खटास आती है पहली बार निकाला गया सलफी केवल पुरूष वर्ग पीता है महिलाएं नहीं पीती।

सलफी को आबकारी विभाग अपने नियमों के अनुसार शराब का प्रकार मानता है। इसके क्रय विक्रय पर हस्तक्षेप की बात करता है सलफी में 6 प्रतिशत अलकोहल रहता है यह अन्य शराबों की तरह व्यक्ति को इतना मस्त नहीं करता कि दिन दुनिया से बेखबर हो जाय, होश खो बै,ठे व अपराध कर जाय। इसीलिए यह सलफी आदिवासी को परम प्रिय है।

सलफी की सर्व व्यापकता इसे लोकोक्ति व कथा कहानियों में भी स्थान देने का कारण बना। एक पहेली इस प्रकार है –

राजा घरों भंयसी सिंगे गोरस देयसी

अर्थात राज महल की भैस जो सींग से दूध देती है पहेली का उत्तर सलफी का पेड़ है। राज महल की भैस है तो असाधारण होना चाहिए। इसलिए वह सींग से दूध देती है। राजमहल की यह भैंस सलफी का पेड़ ही है जिससे मादक द्रव्य स्रवित होता है। जो सफेद रंग का होने के कारण दूध कहलाया। वृक्षों के प्रकार प्रचार में सलफी महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त करता है। जन कवि इसे अपने वर्णन का एक प्रिय विषय मानता है।

पुत्र को उत्तराधिकार में सलफी, पुत्री को दहेज में सलफी, मुखिया को भेंट में सलफी, मेहमान के स्वागत में सलफी तो मेहमान की विदाई में सलफी। जन्म से मृत्यु तक के सभी संस्कारों में सर्वसुलभ, सर्वकाल सुलभ, सलफी प्रयुक्त होता है। सलफी के बिना आदिवासी जनजीवन की कल्पना नहीं की जा सकती। घंटो नाचने वाले आदिवासी युवा युवती एक दोना सलफी पाकर मस्त हो जाते हैं सलफी का भरा तुम्बा आदिवासी युवा युवतियों को ललचाता रहता है।

बस्तर के आदिवासी के लिए सलफी ईश्वर प्रदत्त ऐसा तोहफा है जिसकी बराबरी कुछ दूसरा नहीं कर सकता है। कल्प वृक्ष की भांति सलफी आदिवासी के भूख प्यास को मिटाने वाला उसे संपन्न बनाने वाला है। यद्यपि तीन वर्ष तक ही इससे रस निकलता है फिर

भी आदिवासी समाज इसे प्राथमिकता के आधार पर लगाता है , संवर्धन करता है और भावी पीढ़ी को सीख भी देता है कि अपने बच्चे के लिए भावी पीढ़ी के लिए सलफी लगाओ । पूर्णतः वर्तमान में जीने वाला बस्तर का आदिवासी सलफी पेड़ के मामले में दूरदर्शी है अपने लिए नहीं अपने भावी पीढ़ी के लिए वह और कुछ लगाये न लगाये सलफी के दो चार झाड़ अवश्य लगाता है ।

आदिवासी की बात छोड़ दे बस्तर में निवास करने वाली अन्य जातियां भी सलफी का प्रयोग बेहिचक करती है बस्तर के बाजारों में बिक्री की अनिवार्य वस्तु सलफी होती है जिसे प्राथमिकता के आधार पर पहले आओ पहले पाओ के तर्ज पर बेचा जाता है । बस्तर आया बड़ा से बड़ा सरकारी अफसर किताबी ज्ञान के सहारे सुल्फी पीने की इच्छा प्रकट करता है । क्योंकि सलफी को अंग्रेजी में SULPHY लिखा जाता है । सुल्फी पीकर वह अधिकारी मानो अपनी दबी ढ़की इच्छी की पूर्ति करता है ।

सलफी बस्तर को ईश्वर का वरदान है । सलफी शराब नहीं है थोड़ी सी मादकता थोड़ा सा स्वास्थ्य देने वाली सलफी बस्तर वासियों का भोजन भी है आय का स्रोत भी है । अन्य नशीले पेयों की तुलना में सलफी प्रोत्साहन पाने का हकदार है । सलफी बस्तर की पहचान है । बस्तर की सामाजिकता की अनिवार्य कसौटी है । सलफी पेड़ों के स्वामित्व के आधार पर आदिवासी की गरीबी अमीरी मापी जा सकती है । स्त्री पुरूष में समान रूप से लोकप्रिय सलफी निश्चित रूप से आदिवासी की अशरफी है । गंगा – यमुना के जल से अधिक महत्व वाली सलफी बस्तर के आदिवासी की जीवन धारा है । सलफी बिना उसके जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती इसी कारण आज से कुछ वर्ष पूर्व जब सैकड़ों की संख्या में सलफी के पेड़ मरने लगे थे तब आदिवासी चिन्चित हो उठा था उसकी चिन्ता आक्रोश में बदलती इससे पूर्व शासन ने उच्च स्तरीय अधिकारियों का एक दल भेजकर कारणों की जांच करवाई और समस्या का निवारण किया। दंतेवाड़ा तहसीलमें यह सलफी सूखने की बीमारी फैली थी सलफी पर आया खतरा सलफी के अस्तित्वं मिट जाने का खतरा आदिवासी को अपने लिए अपने अस्तित्व के लिए खतरा लगा था और इसीलिए उसने गुहार लगाई थी । दंतेवाड़ा तहसील के कुछ गांव सलफी विंहीन हो गए हैं । शासन सलफी के प्रति आदिवासी लगाव को जानता है इसीलिए तत्काल कार्यवाही की गई थी और सलफी के अस्तित्व पर आए संकट का निराकरण किया गया था । आदिवासी अमृत को नहीं जानता उसके लिए तो सलफी ही अमृत है उसका सगा है, दुख सुख का साथी है । इसीलिए प्राण प्रण से सलफी की रक्षा के लिए वह सन्निध रहता है ।

-00-

## अध्याय -6

# बस्तर की हलबा जाति उत्पत्ति संबंधी विभिन्न अवधारणों का अनुशीलन

छत्तीसगढ़ की अनेक विशेषताओं में से एक है इसकी आदिवासी बहुलता। इसी छत्तीसगढ़ के बस्तर संभाग में हलबा नामक जनजाति निवास करती है। मध्यप्रदेश के दक्षिण में स्थित बस्तर जिला क्षेत्रफल की दृष्टि से छत्तीसगढ़ का सर्वाधिक बड़ा जिला है। यह जिला नतृत्व शास्त्री, समजाशास्त्री, भूगर्भ शास्त्री, भूगोल शास्त्री के साथ-साथ इतिहास वेत्ताओं को भी अपनी ओर आकर्षित करता है। सभी विधाओं के लोगों को शोध एवं अनुसंधान के लिए पर्याप्त आयाम प्रदान करने वाला यह जिला इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है अधिसंख्यक होने के कारण गोड़ और उसकी उपशाखाएं माड़िया, मुरिया अपेक्षाकृत अधिक ज्ञात जनजातियां है। पं. केदारनाथ ठाकुर ने बस्तर के आदि निवासी के रूप में जिन 24 जातियों का उल्लेख किया है उसमें हलबा जाति एक है।[1] ‘‘बस्तर के निवासियों में सबसे अच्छी जाति हलबो की समझी जाती है। यह लोग अन्य निवासियों से बहुत साफ सुथरे रहते है, पहनावा भी इनका अन्य लोगों से अच्छा रहता है। बस्तर में ये लोग लड़ने वाली जाति में है। सिपाहियों का काम सदा से ये लोग करते आये है।[2]

हलबा जाति का इतिहास कब से प्रारंभ होता है इसके बारे में लोक कथायें ही आधार है। हर जाति का अपना इतिहास होता है आवश्यक नहीं कि वह इतिहास लिखित ही हो, स्मृति मंजूषा में सहेजकर, संजोकर रखा गया इतिहास भी अनेक अवसरों पर ज्ञानवर्धक होता है, टूटी कड़ियों को जोड़ने का काम करता है। हलबा जनजाति के संदर्भ में भी यही स्थिति है।

छत्तीसगढ़ के प्रारंभिक इतिहासकारों में **श्री गोकुल प्रसाद** एक है।[3] रायपुर जिले के धमतरी तहसील में नायब तहसीलदार के पद पर कार्य करते समय उन्होने हलबा मुखियों से उनकी उत्पत्ति के संबंध में जानकारी एकत्र की। यह जानकारी निम्नानुसार है :-

‘‘एक उड़िया राजा ने अपने खेतों की फसल को पक्षियों से बचाने के लिए चार कौवा हाकनी (Scare-Crows) बनवाया। एक रात्रि भगवान महादेव व भगवती पार्वती ने इन चारों कौवा हाकनी को देखा। पार्वती के पूछने पर महादेव के इनके बारे में बताया। पार्वती दयालु थी उन्होने सोचा इन्होने मेरी रूचि को जगाया है अतः इनमें प्राणों का संचार

होना चाहिए, कर देना चाहिए। तब महादेव ने पार्वती के कहने पर इन चारों कौवा हाकिनी को प्राणदान दे दिया। परिणामस्वरुप उनमें से दो पुरुष बन गए और दो स्त्री। इसके दूसरे दिन दोनों युगल राजा के पास गए और जो कुछ हुआ सबको कह सुनाया। राजा ने कहा - " तुमने पृथ्वी पर जन्म ले लिया है तो तुम्हारी जाति भी होनी चाहिए अतः महादेव से अपनी जाति पूछ कर आओ। दोनों युगल महादेव के पास पहुंचे और अपनी जाति पूछी। महादेव ने कहा "तुमको हल्बा कहना चाहिए, कारण कि तुमने हवा द्वारा हिल कर पार्वती का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया है। अपना नामकरण संस्कार कराकर ये जगन्नाथपुरी के राजा की सेवा में नियुक्त हो गए कालांतर में कुष्ठ रोगी उड़िया राजा सिहावा की जंगलों की ओर आए और तालाब में स्नान कर रोगमुक्त हुए। हल्बा जाति के लोग उन्हीं के साथ जगन्नानथपुरी से इस ओर आए और बस्तर-कांकेर की तरफ आ बसे।[4]

हल्बो के संबंध में बस्तर के साहित्यकार स्व. गंगाधर सामंत ने बताया था -

"हल्बा उन क्षत्रियों के वंशधर है जो उड़िसा से बस्तर आए। यहां आकर उनमें से बहुतों ने खेती का पेशा अपना लिया और स्थानीय आदिवासी कन्याओं से वैवाहिक संबंध स्थापित कर लिया। हल को उपजीविका का साधन अपनाने के कारण इन्हें। हलवाहक अथवा हल्बा नाम से पुकारा जाने लगा।[5]

सामंत ज़ी इन्हें पतीत क्षत्रिय कहते थे बस्तर में एक कहावत भी प्रचलित है -

"हल्बा क्षत्रि धाकड़ मंत्री"

बस्तर के हल्बो की उत्पत्ति के संबंध में उपरोक्त तथ्यों पर विचार करने से सत्य के निकट पहुंचने में सहायता मिलती है। बस्तर जीतने और वहां पर अपना राज्य स्थापित करने वाले वारंगल (आंध्रप्रदेश) के काकतीय शासको के साथ चौदहवीं शताब्दी के प्रारंभ में बस्तर कौन-कौन आए इस संबंध में एक उक्ति मिलती है। उक्ति इस प्रकार है-

अंदकुरी माहरा, पैंग परजा, पीता भतरा

चालकी वंश राजा, रायगड़ी बाजा। [6]

अर्थात - वारंगल से चालकी वंशी राजा के साथ अंदकुरी माहरा, पेंग, परजा, पीता भतरा, रायगड़ी बाजा बस्तर में आए या लाए गए। रायगड़ी बाजा अभी दंतेवाड़ा के प्रसिद्ध दंतेश्वरी मंदिर में नित्य पूजन के समय बजाया जाता है।

उड़िसा राजा से संबंधित होने का प्रमाण कांकेर रियासत के इतिहास से भी प्रमाणित

होता है। विवरण इस प्रकार है :-

''कांकेर (बस्तर जिला, छत्तीसगढ़) में जब किसी राजा का राज्याभिषेक होता है राजा को दरबारी पोशाक पहिनाता है- राजा का कपड़दार, जो हल्बा जाति का होता है। इसका कारण यह बतलाते हैं कि कांकेर राज्य के आदि संस्थापक पुरी (जगन्नाथ-उड़ीसा) के पदच्यूत **राजा वीर कन्हर देव** कुष्ट रोग के कारण धमतरी के पास सिहावा में निवास करते थे, हल्बा लोगों की सम्मति से राजा ने निकटस्थ नाले में स्नान करके आरोग्य लाभ किया तथा वे उन्हीं लोगों के अनुरोध से ये जगन्नाथपुरी नहीं गए और कांकेर में राज्य करने लगे। हल्बा लोग भी इनके साथ कांकेर चले आए। कांकेर में अभी तक इनकी बड़ी प्रतिष्ठा है।[7] हल्बा लोगों के प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करते हुए राजा ने ''हल्बा '' नामक ग्राम भी बसाया '' कांकेर धमतरी की पुरानी सड़क के निकट यह गांव है यहां पोलिस थाना, स्कूल और जंगल का नाका है इसका क्षेत्रफल 1550 एकड़ और मनुष्य संख्या 587 है। (विवरण 1925 ई. का है।)[8]

हल्बा बस्तर में उत्तर की ओर से आए इसके प्रमाण में कहा जा सकता है कि बस्तर की प्रमुख नदी इन्द्रावती जो बस्तर के लगभग मध्य में बहती है''इस नदी के दक्षिण की ओर हल्बो की संख्या कम है, [9] बहुत कम है। राजा अन्नमदेव के साथ जो जातियां आई उनकी बसाहट दक्षिण बस्तर में है।

हल्बो का बस्तर राज परिवार से संपर्क कैसे हुआ इस संबंध में एक लोक कथा में विवरण मिलता है-'' एक दिन घुमक्कड़ हल्बे वारंगल के दंतेश्वरी मंदिर में पहुंचे। मंदिर प्रांगण में जब वे खाना बना रहे थे तब एक बुढ़िया वहां पहुंची और बोली कि वह जानती है कि हल्बे वहां क्यों आए हैं . बुढ़िया हल्बो को प्रभावित कर मंदिर के अंदर गई और एक कुम्हड़े के साथ लौटी। हल्बा प्रमुख को कुम्हड़ा सौंप कर बोली जाओ तुम्हें तुम्हारा राजा मिलेगा, कुम्हड़े को सुरक्षित रखना। इतना कह बुढ़िया अंतर्ध्यान हो गई। हल्बे बारसूर लौटे। वहां कुम्हड़ा अपने आप फट गया और उसमें से एक राजकुमार निकला। हल्बो ने दंतेश्वरी की जय जयकार की हल्बो को उनका राजा मिल गया था। यही राजकुमार बस्तर का प्रथम काकतीय शासक हुआ। [10] जिस राजा को हल्बो ने पाल पोसकर बड़ा किया उस राजा ने हल्बो के महत्व को समझा। राजा की रक्षा करने वाले हल्बो को राज्य का रक्षक नियुक्त किया गया।'' हल्बो ने न केवल बस्तर की रक्षा में वरन् आक्रमणों में भी राजा का साथ दिया। नवरंगपुर (उड़ीसा) को जीतने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई , 1854 ई. तक (बस्तर राजा भैरमदेव तक) हल्बा लोगों को ही कामदार नामक महत्वपूर्ण पदों पर नियुक्त

किया जाता था। ये कामदार रियासत के पुलिस जवान जैसे थे [11] मोकासदार के रूप में भी हल्बा प्रमुख नियुक्त किए गए। मोकासदार अपने मोकासा गांवों की पट्टी (लगान) स्वयं के लिए वसूलते थे उन्हें अपने गांवों से वसूली गई राजस्व राशि, राजकोष में जमा नहीं करनी पड़ती थी। [12]

बस्तर विजय के पश्चात बस्तर को विभिन्न गढ़ों में विभाजित किया गया प्रशासनिक इकाई के रूप में ये गढ़ बनाए गए थे. हल्बो की विश्वसनीयता और उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करने के लिए काकतीय शासको ने 18 गढ़ हलबा प्रमुखों को सौंपे। इन गढ़ों के नाम है- अन्तागढ़, नारायणपुर, बड़े डोंगर, छोटे डोंगर, बारसूर, बडौली, भैरमगढ़, बीजापुर, जैतगिरी, छिन्दगढ़, मरदापाल, माड़पाल, सिहावा और वृन्दानवागढ़। [13] हल्बा जाति को इस बात का गौरव है कि उनकी जाति बस्तर के राजा की अंग रक्षिका है और राजा उनकी नंगी तलवारों की छाया में चलते हैं।[14]

हल्बा अपनी उत्पत्ति का संबंध भगवान कृष्ण के भाई बलराम के हल से जोड़ते है। बलराम हल रखते थे यही उनका अस्त्र था। बलराम के हल से निकली मिट्टी से हल्बा बने। [15] इसी दंतकथा जैसी दूसरी कथा भी बलराम को लेकर ही है।

''श्रीकृष्ण जब रूक्मिणी को हर कर भाग रहे थे तब रूक्मिणी के भाई ने सिपाहियों के साथ उसका पीछा किया। बलराम का पराक्रम देख सिपाही इतने प्रभावित हुए कि बलराम के हल और मूसल को अपना लिया। कहते है उन्हीं सिपाहियों का हल-बाहना शब्द उच्चारण भेद के साथ संक्षिप्त रुप में हल्बा प्रचलित हो गया।[16]

हल्बो की उत्पत्ति एवं बस्तर आगमन, बस्तर राजा एवं राजघराने के साथ उनके संबंध के बारे में विभिन्न मत मतान्तरों का अध्ययन करने के पश्चात निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि हल्बे यद्यपि मध्यप्रदेश, उड़ीसा, महाराष्ट्र में बसे है तथापि बस्तर में जो महत्व उन्हें प्राप्त रहा है उसके आधार पर स्पष्ट है कि बस्तर राजघराने के साथ उनका निकट का संपर्क था। हलवाहक, हल की मिट्टी से उत्पन्न, कौवा हाकनी से उत्पत्ति विषयक विवरणों में सत्यांश है। हल्बो की बस्तर में कुल संख्या दस प्रतिशत से अधिक नहीं है लेकिन उनकी बोली हल्बी बस्तर की राजभाषा थी।आज भी बस्तर की संपर्क भाषा हल्बो की भाषा हल्बी ही है। हल्बा और हल्बी का यह महत्व इतिहास परंपरा से पुष्ट होता है।

## *संदर्भ सूची*


1. ठाकुर केदारनाथ, बस्तर भूषण अर्थात बस्तर राज्य का वर्णन, वर्ष 1908 ई पृ. 30

2. उपरोक्त पृष्ठ - 32

3. छत्तीसगढ़ के जिले रायपुर के संबंध में रायपुर- रश्मि और दुर्ग के संबंध में दुर्ग दर्पण 1921 ई. के लगभग उनकी प्रकाशित पुस्तक है।

4. सेंसस आफ इंडिया 1901 जिल्द 13 सेंट्रल प्राव्हिन्सेस एंड बरार पार्ट-1 रिपोर्ट आर.बी. रसेल वर्ष 1902 पृ. 65

5. झा बसंत लाल लेख बस्तर में दशहरा पर्व, इन्द्रावती पृ. 103

6. कुंवर बाल मुकुन्द सिंह, बस्तर का इतिहास, अप्रकाशित .

7. श्रीवास्तव धानूलाल, अष्टराज्य अम्भोज प्रकाशन वर्ष 1925 पृ. 25

8. उपरोक्त पृ. 61

9. सी.एल. आर. ग्लासफर्ड - सिलेक्शंस फ्राम द रिकार्ड आफ गव्हर्नमेंट आफ इंडिया फारेन डिपार्टमेंट क्र. 39 वर्ष 1863 ई. सामान्यतः ग्लासफर्ड रिपोर्ट के नाम से जाना जाता है। पैरा 76.

10. लाला जगदलपुरी लेख संघ शक्ति की संवाहिका देवी दंतेश्वरी , दंतेश्वरी दर्शन पुस्तक से .

11. स्व. नर्मदा प्रसाद श्रीवास्तव से भेंट वार्ता 3 फरवरी 1990

12. लाला जगदलपुरी, आरण्य की संस्कृति से जुड़ी जनजाति हल्बा, लेख मध्यप्रदेश संदेश 10 सितम्बर, 1986 पृ. 43

13. स्व. नर्मदा प्रसाद श्रीवास्तव से ली गई भेंटवार्ता 3 फरवरी, 1990

14. मेजर बट्टी - ए हल्बी ग्रामर, भूमिका पृ. 4

15. रसेल व हीरालाल, ट्राइब्स एंड कास्टस आफ द सेंट्रल प्राव्हिन्सेस आफ इंडिया ग्रंथ 3 पृष्ठ 187

16. लाला जगदलपुरी, पूर्वोक्त पृष्ठ 40


-0-

## अध्याय–7

# बस्तर की हलबा जनजाति विवाह संस्कार

छत्तीसगढ़ का बस्तर संभाग अपनी आदिवासी बहुलता के कारण नृतत्व–शास्त्रियों व समाज शास्त्रियों को अपनी ओर आकर्षित करता है। बस्तर में निवास करने वाली आदि निवासियों की 24 जातियों में से हलबा जाति एक है।[1] चौदहवीं शताब्दी में बारंगल के काकतीय राजवंश ने बस्तर को जीता। ''हलबा काकतीय सेना केप्रमुख अंग थे। गोपन से पत्थर फेंकना, गढ़ किले की रक्षा करना, गढ़िया, किलेदार, सेनापति, हाथियों को संभालना, सेना के लिए भोजन की व्यवस्था करना – हलबा लोगों के मुख्य कार्य थे। सेना में विभिन्न पदों पर कार्य करने के अलावा हलबा कृषि एवं पशुपालन भी करते थे। बस्तर रियासत में स्थित मंदिरों की व्यवस्था हलबो की देख रेख में है।[2] परिवर्तन के लिए बस्तर की अन्य जनजातियों की तुलना में हलबा अपेक्षाकृत जल्दी तैयार होते है।'' यह जाति नगरीय और अरण्यवी संस्कृति के बीच की कड़ी कही जा सकती है।[3] 1961 की जनगणना के अनुसार हलबा लोगों की कुल संख्या 40 हजार थी मगर यह तथ्य आश्चर्य में डालने वाला है कि हलबी बोलने समझने वालों की संख्या 3 लाख के लगभग थी। हलबी बस्तर की संपर्क भाषा रही है। अन्य जनजाति के लोग अपनी भाषा के अलावा हलबी का भी प्रयोग करते हैं। महत्वपूर्ण राजकीय घोषणायें हलबी में प्रचारित–प्रसारित की जाती है।[3]

''हलबा जनजाति की आबादी मुख्य रुप से मध्यप्रदेश, उड़ीसा और महाराष्ट्र में पायी जाती है। मध्यप्रदेश केअधिकतर हलबा परिवार बस्तर, रायपुर, दुर्ग, छिन्दवाड़ा और बालाघाट जिलों में आबाद मिलते हैं। भौगोलिक विभाजनके साथ–साथ हलबो के विभिन्न तबकों में संस्कृति भेद भी स्वाभाविक रुप से पाये जातेहैं।[4]

हलबो के विवाह संस्कार पर चर्चा से पूर्व यह स्पष्ट कर देना समीचीन होगा कि हलबो के संस्कार हिन्दू संस्कारों के अतिनिकट हैं। हलबा विवाह संस्कार की चर्चा करते समय भी हमेंइस तथ्य को विस्मृत नहीं करना है। ''अपनी बहन की संतान से ये विवाह कर लेते है इसे हलबा जाति दूध लौटाना कहती है।[5]

अशिक्षित, असभ्य समाजों में बाल विवाह एक बुराई के रूप में विद्यमान है। हलबा इसके अपवाद है। हलबा समाज में बाल विवाह को सामाजिक बुराई माना गया है। बाल विवाह करने वाले को समाज से बहिष्कृत कर दिया जाता है।

हलबा समाज में तलाक देने की प्रथा है मगर सुलह–सफाई के सारे रास्ते जब बंद हो जाते हैं तभी तलाक की स्थिति बनती है। तलाक पति ही दे सकता है पत्नि नहीं। तलाक शुदा महिला का विवाह तलाक शुदा पुरुष या अन्य कारणों से विधुर हुए व्यक्ति के साथ ही हो सकता है। तलाक शुदा महिला से कोई कुंवारा पुरुष विवाह नहीं कर सकता। ''विवाह विच्छेद और विधवा विवाह के लिए हलबा समाज अपने सदस्यों को खुली छूट देता है परन्तु

निर्दोष स्त्री को त्यागने पर उसे खर्च देना पड़ता है, विधवा स्त्री से कोई कुंवारा व्यक्ति विवाह नहीं कर सकता ।[6]

हलबा जाति पुत्र–पुत्री में भेद नहीं करती । दोनों के जन्म पर समानरूप से उत्सव मनाया जाता है। पुत्री जन्म को श्रेष्ठ माना जाता है । पुत्री के जमाता के रूप में एक और पुत्र मिलता है –ऐसा विचार कर पुत्री के पति को महत्व देते हैं । [7]

सभ्य समाज में पुत्री का पिता वर की तलाश में निकलता है मगर हलबा समाज में स्थिति भिन्न है। ''विवाह के लिए लड़की का हाथ लड़के वाले मांगते है । वर पक्ष के लोग वधू कीमत भी देते हैं । [8]

हलबा समाज में दो तरह के विवाह समारोह होते हैं । सुभीते के दृष्टिकोण से इन्हें संक्षिप्त समारोह और विस्तृत समारोह कहा जा सकता है।

बस्तर अंचल में प्रायः सभी जनजातियों में माहला जाने से विवाह कार्यक्रम का प्रारंभ होता है। सभ्य समाज में मंगनी या अंगूठी पहनाने की जो प्रथा है उसी का यह आदिवासी संस्करण है । विवाह योग्य पुत्र होने पर पिता अपने संबंधियों के साथ विवाह योग्य कन्या के पिता के घर जाता है । अपने साथ चावल, दाल शराब व मुर्गा तथा कपड़ा भी लेकर जाता है । पूर्व निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार जब ये कन्या के घर पहुंचते है तो उनका स्वागत किया जाता है । विवाह के लिए कन्या मांगने आए लोग जो सामग्री लेकर आते है जितनी मात्रा में लेकर आते है उससे वर पक्ष की आर्थिक स्थिति का आंकलन होता है । कन्या पक्ष के लोग **माहला** आने वालों के सम्मान में भोज देते है। इस भोज में मांस व मदिरा शामिल रहता है। माहला का पहला दौर स्वागत व भोज के पश्चात समाप्त होता है । दोनों पक्ष यदि विवाह के लिए सहमत होते है तब वधू कीमत का निर्धारण होता है, बोलचाल की भाषा में इसे खरचा (खर्च) कहा जाता है । यह वधू कीमत रुपयों,चावल, कपड़ा व अन्य वस्तुओं के रूप में निर्धारित होता है। जातीय पंचायत के सदस्यों की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। कभी–कभी एक ही बार माहला जाने पर सभी बातों का निर्धारण हो जाताहै अन्यथा अनेक बार माहला जाकर धीरे–धीरे क्रमशः सभी बातें तय होती है ।

माहला व खरचा के पश्चात मुहूर्त निकालने का महत्वपूर्ण समय आता है । उल्लेखनीय है कि बस्तर के हलबा समाज में मुहूर्त निकालने का शुभ कार्य कोई ब्राह्मण नही करता वरन हलबा समाज के ही कुछ लोग करते है जो पीढियो से यह कार्य करते आ रहे है । मुहूर्त निकालने का पवित्र कार्य **पंजियार** करता है – पंजी देखने वाला पंजियार कहलाता है । शुभ लग्न व घड़ी का निर्धारण तो यह करता ही है, शुभ स्थान का भी निर्धारण यही करता है । विवाह के समय वर – वधू कहां पर और किस दिशा की ओर मुंह करके खड़े होंगे यह पंजियार ही निर्धारित करता है । पूर्व निर्धारित स्थान पर ही वर वधूको खड़ा किया जाता है। पंजियार हलबा समाज का एक महत्वपूर्ण व्यक्ति होता है । उल्लेखनीय हैकि पंजियार विवाह स्थल पर विवाह मुहूर्त में उपस्थित नहीं रहता । पंजियार का विवाह स्थल पर उपस्थित रहना प्रतिबंधित है । अमुक तिथि व अमुक समय पर विवाह होना निर्धारित होता है और विवाह संस्कार की तीसरी कड़ी का संपादन होता है।

खरचा का कन्या के घर पहुंचना एक महत्वपूर्ण कार्य होता है। निर्धारित वधू कीमत विवाह से पूर्व कन्या के घर पहुंचा दिया जाता है। माहला के समय निर्धारित सामग्री कन्या के घर जब पहुंच जाता है तब विवाह संस्कार का अगला सोपान सम्मुख होता है।

हिन्दू प्रभाव में आकर हलबा वर पक्ष बारात के साथ वधू के घर जाता है। अन्य आदिवासियों में कन्या पक्ष के लोग कन्या के साथ वर के घर आते है। हलवा समाज में जब संक्षिप्त विवाह, संस्कार होता है तब कन्या को वर के घर लाया जाता है। वर के साथ आए बारातियों का स्वागत किया जाता है उन्हें आदर के साथ ठहराया जाता है।

विवाह स्थल को सजाया जाता है। मंडप बमाया जाता है। **महुआ पेड़** की शाखाओं को काटकर लाया जाता है और महुआ की छाया में संस्कार होते है।महुआ से शराब बनाई जाती है, महुआ का आदिवासी समाज में महत्वपूर्ण स्थान है। विवाह संस्कार में कन्या का पिता सम्मान प्राप्त करता है। पंजियार द्वारा पूर्व में निर्धारित स्थान पर वर और वधू को खड़ा किया जाता है दोनों के मध्य चादर तान कर परदा बनाया जाता है। हिन्दू विवाह पद्धति में दामाद की महत्वपूर्ण भूमिका होती है उसी का अनुसरण करते हलबा विवाह संस्कार में दामाद को महत्व दिया जाता है। वर का जीजा, वर को निर्देश देता रहता है और वर उसी के अनुसार कार्यवाही करता है। विवाह मंडप का सूत्रधार वर का जीजा ही होता है, वही पंडित है वही मुख्य कर्ताधर्ता है। विवाह स्थल पर दो दिए जलाए जाते है और उनकी **लौ को एकाकार किया** जाता है। दो दिल मिल रहे है ऐसा भाव प्रदर्शन इसका उद्देश्य होता है।दीपक की लौ को एकाकार करने के पश्चात विवाह संस्कार का अगला रस्म पूरा किया जाता है। निश्चित घड़ी पर जो पंजियार या दोसी द्वारां निर्धारित किया हुआ होता है, वर वधू के बीच का परदा हटाया जाता है परदा हटने पर वर अपने हाथ में रखा चावल वधू पर फेंकता है, प्रत्युत्तर में वधू अपने हाथ में रखा चावल वर पर फेंकती है।[१]

एक दूसरे पर चांवल फेंकने के पश्चात वर और वधू के वस्त्रों को गांठ लगाया जाता है। वर के धोती का एक सिरा वधू की साड़ी के सिरे से बांधा जाता है। जीवन सफर में साथ डूबना, साथ तैराना, दुख सुख के सदैव साथ रहना इस भाव को व्यक्त करता है गठबंधन।

गठबंधन के पश्चात सप्तपदी होता है सप्तपदी के लिए बुलावा होने पर वर को मंडप में लाया जाता है। सप्तपदी याने सात फेरे हिन्दू विवाह पद्धति का अनिवार्य अंग है जिसे आदिवासी होने के बावजूद हलबो ने अपना लिया है। यह सप्तवेदी विवाह वेदी के चारों ओर

लगाई जाती है। सात फेरे के पश्चात वर–वधू पति–पत्नि हो जाते है। सामाजिक मान्यता उन्हें मिल जाती है। हलबा विवाह समारोह मंडप में होता है जिसे देशकाल वातावरण के अनुरूप सजाया जाता है। व्यवस्थित मंडप के नीचे संस्कार होता है।

हलबा विवाह के कुछ दूसरे प्रकार भी है जिनमें से एक **लमसेना प्रथा** है। ''लमसेना पला पढ़ा अपने घर में मगर चाकरी करने दूसरे के घर में निकला किशोर है। साध्य, साधक और साधन का एक अनूठा त्रिकोण है– लमसेना। लमसेना का साध्य निश्चित रुप से पत्नी की प्राप्ति होती है इसके लिए भावी पत्नी के घर वालों की (मां, बाप, भाई–बहन) कठिन सेवा उसे करनी पड़ती है। साधक बेचारा लमेसना खुद होता है। अनवरत साधना के पश्चात

उसे साध्य (पत्नी) की प्राप्ति होती है। बहुत कम क्षेत्रके लोगों को पत्नी प्राप्ति के लिए ऐसी कठोर साधना करनी पड़ती है बस्तर का लमसेना इसी प्रकार के लोगों में से हैं।[10] ऐसा हलबा परिवार जो वधू कीमत नहीं चुका सकता, वह अपने बेटे को उसके भावी ससुराल में 3–5 या 7सालों तक सेवा के लिए भेजता है। सेवा द्वारा वह वधू कीमत चुकता करता है। शेष विवाह संस्कार पूर्व में वर्णित ढंग पर होता है।

मानव जीवन को पवित्र, सुन्दर तथा उन्नत बनाने के लिए जिन रीतियों की व्यवस्था की गई है शास्त्रकारों ने उन्हें संस्कार कहा है जीवन और मृत्यु के बीच विवाह मनुष्य द्वारा खोजा गया और स्वीकृत लगभग उतना ही महत्वपूर्ण संस्कार माना जाता है जितना स्वयं जीवन और मृत्यु। विवाह संस्कार जाति, जनजाति की निजी पहचान को भी अभिव्यक्ति और रेखांकित करते हैं। हलबा समाज के विवाह संस्कार आदिवासी विवाह संस्कार और सभ्य हिन्दुओं के विवाह संस्कार के मध्य की स्थिति का है जहां दोनों संस्कारों के कुछ महत्वपूर्ण रस्म पूरे किए जाते हैं।

## *संदर्भ सूची*


1. ठाकुर केदारनाथ, बस्तर भूषण, प्रकाशन वर्ष, 1908 ई. पृष्ठ –30

2. श्रीवास्तव नर्मदा प्रसाद, अंचल के वासी – हलबा, आकाशवाणी भोपाल से 3 फरवरी 1990 को प्रसारित रेडियो रूपक।

3. बेहार रामकुमार, आकाशवाणी जगदलपुर (बस्तर) से 19.10.91 को प्रसारित वार्ता।

4. लाला जगदलपुरी, बस्तर इतिहास एवं संस्कृति, पृष्ठ 82

5. तेलंग भालचंद्र राव, छत्तीसगढ़ी, हलबी, भतरी बोलियों का भाषा वैज्ञानिक अध्ययन, पृष्ठ 360

6.लाला जगदलपुरी, पूर्वोक्त , पृष्ठ 82

7. श्रीवास्तव नर्मदा प्रसाद, पूर्वोक्त।

8. दोषी, किरिट, अंचल के वासी हलबी, रेडियो रूपक 3 फरवरी 1990 को आकाशवाणी भोपाल से प्रसारित।

9. कोस्मा धनाराम, भेंटवार्ता 9.10.91 श्री कोस्मा हलबा जाति के है और शासकीय महाविद्यालय जगदलपुर में प्राध्यापक हिन्दी के पद पर कार्यरत है।

10. बेहार रामकुमार और बेहार निर्मला, बस्तर आरण्यक पृ. 90–91


–oo–

## अध्याय -8

# गुरू घासीदास जी का विलक्षण प्रगटोत्सव

गजेटियर किसी भी देश, प्रांत या क्षेत्र का आईना होता है। आईने में छवि देखी जाती है। गजेटियर में क्षेत्र विशेष से संबंधित संपूर्ण विवरण उपलब्ध रहता है। जहां तक भारत का संबंध है यहां गजेटियर लिखने की परंपरा अंग्रेजों ने चलाई। गजेटियर के इतिहास में, चार्ल्स ग्रांट द्वारा 1870 में लिखित द गजेटियर ऑफ द सेन्ट्रल प्रोव्हिन्सेस ऑफ इंडिया मील का पत्थर है। ग्रांट अंग्रेज थे , अंग्रेजी दृष्टिकोण से लिखने के बावजूद अंचल का कोई महत्वपूर्ण तथ्य उनसे छिपा नहीं था , सी.पी. का आईना चार्ल्स ग्रांट का गजेटियर था। ग्रांट ने अपने ग्रंथ में गुरू घासीदास के संबंध में काफी लिखा है। ग्रांट के लेखन में गुरू घासीदास का वर्णन अनेक दृष्टि से महत्वपूर्ण है। गुरू घासीदास ने लगभग 1850 ई. में अपनी अंतिम समाधि ली थी। ग्रांट का गजेटियर 1870 ई. का है। ग्रांटने जब लिखा तब गुरू घासीदास के प्रत्यक्ष संपर्क में आए लोग जिंदा थे, ग्रांट के वर्णन, से ग्रांट के सजीव वर्णन से ऐसा लगता है कि गुरू घासीदास को निकट से देखने, सुनने, जानने वाला व्यक्ति वर्णन करता गया और ग्रांट लिखते गये।

चार्ल्स ग्रांट का गजेटियर पहला ऐतिहासिक लेखन है जिसमें गुरू घासीदास का विवरण प्रस्तुत किया गया है। समकालीन समाज में समकालीन शासन तंत्र में गुरू घासीदास समाज में समकालीन शासन तंत्र में गुरू घासीदास चर्चित वर्णित थे इसमें दो राय नहीं। यह वह समय था जब गुरू घासीदास को अंर्तध्यान हुए अदिक समय नहीं हुआ था। घासीदास को क्या कहा जाए उनके नाम के आगे क्या लिखा जाए ? यह तय नहीं हो पाया था। ग्रांट ने बिना उपसर्ग, प्रत्यय के बिना विशेषण के घासीदास का नाम व कार्य विवरण दे दिया है।

ग्रांट ने गुरू घासीदास द्वारा चलाये गये आंदोलन को धार्मिक आंदोलन की श्रेणी में रखा है। विदेशी लेखक धार्मिक और सांस्कृतिक शब्द में अन्तर नहीं समझ सकते। ग्रांट ने भी गुरू घासीदास को धार्मिक आंदोलन चलाने वाला लिखा है। गुरु घासीदास जी का सही मूल्यांकन आज भी नहीं हो पाया है। 1870 में तो प्रश्न ही नही उठता था। ग्रांट ने गुरु घासीदास के आंदोलन को एक जाति विशेष का आंदोलन लिखा जो कि पूर्णरूपेण सत्य नहीं है।

ग्रांट ने यह स्पष्ट लिखा है कि गुरू घासीदास असामान्य रूप से गौर वर्णी थे। गुरु घासीदास जी का गौर वर्ण सही में उल्लेखनीय बात थी ऐसा गोरा रंग बहुत कम दिखता है,

भारत में तो खासकर नहीं। गुरू घासीदास उच्च वर्ण के हिन्दुओं द्वारा निम्न वर्ण के हिन्दुओं को दबाए जाने के खिलाफ थे। स्थान- स्थान पर भ्रमण कर उन्होंने देखा था कि दुर्व्यवहार होता था। सताया जाता था, तंगाया जाता था। गुरू घासीदास का साधु स्वरूप जनमानस में इस तरह बैठ गया था कि पूरे अंचल में उनकी प्रतिष्ठा थी। अधिकांश की यह धारणा थी कि गुरू घासीदास आलौकिक शक्तियों के स्वामी है। थोड़े ही समय में गुरू घासीदास के साथ भक्त समूह एकत्र हो गया जो उनके बताये मार्ग पर स्वंय चलते थे और लोगों को चलने की प्रेरणा देते थे। ईश्वरीय दूत के रूप में मसीहा के रूप में 1870 में ही उन्हें माना जाने लगा था।

गुरू घासीदास केवल घासीदास के नाम से उल्लेखित थे। गुरू घासीदास, बाबा घासीदास बीसवीं शताब्दी में उनके नाम के साथ जुड़ा। गुरू घासीदास के जीवन से संबंधित घटनाओं में से केवल गिरौद के पास तपस्या के लिए जाने और वहां से लौटने का वर्णन किया है। यह वर्णन इतना प्रभावशाली है कि ऐसा लगता है मानो चार्ल्स ग्रांट ने स्वयं संपूर्ण दृश्यों को देखा हो। छत्तीसगढ़ के पूर्वी जंगलों में घासीदास विचरणकरते थे। गिरौद नामक छोटे से गांव के पास वे जोक नदी, महानदी से जहां मिलती है उसी के निकट उन्होंने अपने अनुयायियों को विदा किया और एकांत साधना के लिये पहाड़ियों के पीछे चले गये। जाने से पूर्व शिष्यों को स्पष्ट निर्देश दिया कि छः माह तक उनकी खोज ढूंढ़ न की जाए, छः माह पश्चात वे लौंटेगे नई ज्योति के साथ लौटने की बात गुरू ने शिष्यों से की।

गुरु तो तपस्या के लिए वन को चले गये। शिष्यों ने समय का सदुपयोग किया, गांव- गांव, गली गली, घर घर, घूम कर उन्होंनें गुरू घासीदास का तप के लिए वन गमन का समाचार फैलाया। छः माह पश्चात निश्चित तिथि व वार को गुरू घासीदास के तप बल के साथ वापस लौटने का ऐसा समा बांधा गया कि अंचल का हर व्यक्ति उस शुभ घड़ी में सशरीर उपस्थित रहने की योजना बनाने लगा। ईश्वर के निकट से ईश्वरीय ज्ञान लेकर ईश्वरीय आदेश के साथ उनका गुरू लौटने वाला था। एक उत्तेजना का वातावरण कुछ पाने कुछ अलौकिक दृश्य देखने की उत्कंठा थी।

समुद्र में उठने वाले ज्वार की भांति निश्चित तिथि सेपूर्व हजारों की संख्या में छत्तीसगढ़ के कोने- कोने से घासीदास के दर्शन के लिए लोग गिरौद की ओर रवाना हुए। सड़कों पर अनुयायियों की इतनी संख्या बढ़ गई थी कि सड़क पर दूसरे का चलना असंभव हो गया था। गुरू घासीदास जी के दर्शन के लिये बाल वृद्ध, स्त्री पुरूष सभी एकत्र होने लगे थे। गिरौद की यात्रा तीर्थ यात्रा का रूप ले चुका था। कहां जा रहे हो कहने से तीर्थ यात्रा जा रहे हैं यह जवाब होता था। नन्हें दूध पीते बच्चे को गोदी में लिये मां यात्रा पर थी क्योंकि यह दृश्य तो अनुपम था, न भूतों न भविष्यत की स्थिति थी। आज तक न तो किसी राजनेता

को या किसी अन्य धर्म के नेता को देखने लिए ऐसी भीड़ इकट्ठी हुई। स्वतंत्र स्वतः स्फूर्त साधन विहिन जन अलौकिक दृश्य देखने उपस्थित होने जा रहा था। बूढ़े डोलियों में बैठकर पहुंच रहे थे। तीर्थ यात्रा के कष्ट से अनेक राह में ही मर गये, मगर काफिला नहीं रूका मानों जीवन का एक मात्र लक्ष्य गुरू घासीदास जी का दर्शन ही रह गया हो।

निर्धारित तिथि व वार आ पहुंचा। सूर्योदय से पहले ही गिरौद ग्राम के पास हजारों की संख्या में लोग अपलक उस पगडंडी को देख रहे थे जिस पर चलकर गुरु घासीदास छः माह बाद आने वाला था। ईश्वरीय संदेश लाने वाला था। प्रत्यक्ष दर्शन व प्रत्यक्ष श्रवण का लोभ मृत्यु के रोके भी नहीं रूका था। दलित और पिछड़े वर्ग को अपने उत्कर्ष का बीजमंत्र मिलने वाला था। आशाएं, आकांक्षाएं मूर्त रूप लेने वाली थी। भोर की बेला में शांत – प्रशांत वातावरण में सांस रोके खड़े जन समूह को दूर से पहाड़ियों के पीछे से मसीहा आते दिखा जन समूह के पास आकर गुरू घासीदास खड़े हुए स्वागत सत्कार के पश्चात गुरु घासीदास जी ने छत्तीसगढ़ी में एकत्रित जन समूह को संबोधित किया। जंगल में अलौकिक शक्ति ने उन्हें छः माह तक रोक रखा था, अलौकिक उच्च शक्ति से संवाद का उल्लेख करते हुए गुरू घासीदास ने कहा अपने अनुयायियों को विशेष संदेश देने के लिए परम पिता परमेश्वर ने उसे अधिकृत किया है। इस संदेश में मुख्य रूप से मूर्ति पूजा का निषेध लेकिन अदृश्य अलौकिक शक्ति सतनाम की पूजा करना, सामाजिक समता का संदेश शामिल था। ईश्वर है लेकिन मूर्ति के रूप में उसकी पूजा अर्चना न की जाय। उसे माना जाय अहसास किया जाय, संसार का सृष्टा नियामक वहअदृश्य अलौकिक शक्ति है। इस नए पंथ का सर्वोच्च गुरू वह स्वयं है और उनके ही वंश परंपरा में यह पद बना रहेगा। इस व्यवस्था में कभी भी परिवर्तन नहीं होगा।

गुरू घासीदास के बताये मार्ग पर उनके अनुयायी चलने लगे। मूर्ति पूजा के विरोधी और सामाजिक समला के आकांक्षी गुरू घासीदास के श्वेत झंडे के नीचे एकत्र होने लगे उनकी संख्या लगातार बढ़ती गई। रायपुर जिले में सतनामियों की संख्या सर्वाधिक है। अछूत समझी जाने वाली जातियों के अलावा अहीर, साहू, कुर्मी, गोड़ , बैगा, बनिया, सोनार सभी शामिल है। लगभग एक करोड़ लोग सतनामी है। म.प्र. शासन ने गुरू घासीदास की स्मृति में दलितोत्थान और सामाजिक चेतना के क्षेत्र में उत्कृष्ठ कार्य करने वाले व्यक्ति या संस्था को प्रतिवर्ष पुरस्कृत करने की घोषणा की है समाज सेवियों का बड़ा वर्ग इस दिशा में कार्य के लिये प्रेरित होगा। भारतीय संत परम्परा के गुरू घासीदास निर्गुण उपासकों की श्रेणी में आते हैं। ***अंचल में ईसाईयत का प्रचार रोकने में सतनाम पंत महत्वपूर्ण कारक रहा है।***

--oo--

## अध्याय -9

# नरबलि बंद करावाने वाले अभूतपूर्व संत गुरूघासीदास

(बलिप्रथा के विरूद्ध विश्व इतिहास की पहली और अनोखी क्रांति)

अंचल की प्रसिद्धि विभिन्न कालों में विभिन्न कारणों से रहती है। ऐतिहासिक घटनाएं व ऐतिहासिक व्यक्तित्व ही इसके कारण रहते हैं। अठारहवीं शताब्दी में छत्तीसगढ़ अपने युग पुरूषगुरू घासीदास के कारण चर्चित वर्णित रहा। छत्तीसगढ़ इतिहास के पन्नों में स्थान पाया तो वह किसी राजा महाराजा के कारण नहीं वरन जनसाधारण के प्रतिनिधि घासीदासजी के कारण पाया। घसिया से घासीदास, गुरू घासीदास, बाबा घासीदास बनने का वृतांत बड़ा रोचक है - मोहक है। स्वयं के चिन्तन मनन से स्वयं की तपस्या से साधना से उन्होने न केवल संबल पाया, प्रसिद्धि पाई वरन अपने समाज के लिए एक स्थाई परंपरा सतनाम परंपरा छोड़ी।सतनाम पंथ अठारहवीं शताब्दी में छत्तीसगढ़ की हारी थकी जनता के लिए एक संज्ञीवनी था। गुरू घासीदास धारा के विपरीत बढ़ने वाले व्यक्तित्व थे उपदेशक धर्म प्रचारक उच्च वर्ण का ही हो सकता है इसे उनके जीवन क्रम ने नकारा जनसाधारण को जनसाधारण की भाषा में उन्होने सीख दी। छत्तीसगढ़ी भाषा के इतिहास में छत्तीसगढ़ी को महत्व दिलाने वाले लोगों में गुरू घासीदास का नाम आदर से लिया जावेगा। महात्मा कबीर की भांति गुरू घासीदास भी समाज के दुखती रग पर हाथ रखने वाले थे। जो प्रसिद्धि पंजाब में गुरू नानकदेव को, महाराष्ट्र में संत ज्ञानेश्वर को, गुजरात में नरसिंह भगत को, बंगाल में चैतन्य महाप्रभु को प्राप्त हुई है वही प्रसिद्धि छत्तीसगढ़ अंचल में गुरू घासीदास को प्राप्त हुई है।

गुरुघासीदास के जीवन प्रवाह में साधना के पथ पर अनेक पड़ाव आए। इन पड़ावों में कुछ ज्ञात है कुछ अज्ञात या अल्प ज्ञात है। अल्प ज्ञात प्रकरणों में से एक प्रकरण को प्रस्तुत करना मेरा उद्देश्य है। महान संत घासीदास का बस्तर प्रवास ऐसा ही अल्प ज्ञात प्रकरण है। यह ऐतिहासिक सच्चाई है कि बस्तर में सतनाम पंथ के अनुयायी कम है मगर यह भी ऐतिहासिक सच्चाई है गुरूघासीदास ने बस्तरमें ऐसा कार्य किया जो सुदूरगामी परिणामों वाला रहा। बस्तर के आदिवासी जीवन में बस्तर के माई दंतेश्वरी प्रकरण में इस घटना का महत्वपूर्ण स्थान है। गुरू घासीदास ने दंतेवाड़ा स्थित माई दंतेश्वरी को नरबलि न लेने हेतु मना लिया। यह ऐसा चमत्कारिक कार्य था जिसकी तुलना किसी अन्य कार्य से नहीं की जा सकती। नरबलि के मामले में भी यह सर्व प्रचारित तथ्य था। नरबलि से देवी

प्रसन्न होती है यह भ्रांत धारणा फैली हुई थी और इस निमित्त अभागे लोगों को पकड़ा जाता था और देवी को प्रसन्न करने के लिए बलि दिया जाता था।

बस्तर अंचल के माई दंतेश्वरी की प्रतिष्ठा है।बस्तर का राज परिवार काकतीय राजवंश का है। वारंगल से यह बस्तर आया। चौदहवीं शताब्दी के द्वितीय चतुर्थांश में बस्तर अंचलपर इस वंश का शासन प्रारंभ होता है। काकतीय अपने साथ अपनी ईष्ट देवी दंतेश्वरी को भी लाए और बस्तर के दंतेवाड़ा नामक स्थल पर देवी की मूर्ति स्थापना की। धीरे-धीरे दंतेश्वरी बस्तरके जनजीवन में समाहित होती गई। राजा की ईष्ट देवी जनता की ईष्ट देवी बन गई। बस्तर का आदिवासी समाज देव- देवी को भी मानवजैसा क्रिया- कलाप वाला मानता है। दंतेश्वरी देवी है। उनका पति होना चाहिए। उनका पुत्र होना चाहिए बस्तर के आदिवासी समाज ने भैरम देवको देवी का पति और धंवलादेव को देवी का पुत्रमाना और उनकी भी प्रतिष्ठा की। पति- पत्नी पुत्र की व्यवस्था है तो परिवार में लड़ाई झगड़े का भी स्थान होना चाहिए। यह लड़ाई बहुज्ञात है कि देवी दंतेश्वरी और भैरमदेव दंतेवाड़ा के मंदिर में रहते थे। भैरम देव को दंतेश्वरी देवी का नरबलि लेना पसंद नहीं था। वे प्रायः इस संबंध में देवी को समझाते थे देवी जब नहीं मानी तो वे दंतेवाड़ा का मन्दिर छोड़ कर अन्यंत्र चले गए और भैरमगढ़ में जा बसे। इस घटना को उल्लेख इसलिए आवश्यक है कि नरबलि लेने से दंतेश्वरी माई को उसके पति भी नहीं मना कर सके उस कार्य को छत्तीसगढ़ के संतगुरू घासीदास ने कर दिया।

पारंपरिक वर्णन से ज्ञात होता है कि गुरू घासीदास यात्रिक स्वभाव के थे। स्थान - स्थान पर जाकर मौके पर समस्या सुनते थे और उसका निदान करते थे। घूमघूम कर लोगों को अपनी बात बतलाये थे। सतनाम का प्रचार प्रसार करते थे। विचार सागर में गोते लगाकर वे समस्या के समाधान के लिये मोती तलाशते थे। गुरू घासीदास के जीवन यात्रा के महत्वपूर्ण पड़ाव स्थलके रूप में कुछ स्थान चिर परिचित है। जन्म स्थल होने के कारण **गिरौदपुर,** आत्मबोध के लिए **सारंगढ़** ज्ञान प्राप्ति के लिए गिरौदपुर, सतनाम पंथ को सीकार करने वाला प्रथम गांव **तेलासी,** मुक्तिस्थल **भंडारपुरी** ये ज्ञात स्थल है। देवी को नरबलि न लेने के लिए मनाने के प्रकरण से बस्तर जिले में स्थित **दंतेवाड़ा** अल्प ज्ञात प्रकरण है।

गुरूघासीदास को ज्ञात हुआ कि बस्तर में देवी को प्रसन्न करने के लिए नरबलि दी जाती है। अहिंसा के पुजारी घासीदास के लिए यह चुनौती थी। पशुपक्षी के प्रति भी अहिंसा का बर्ताव करने वाले संत कैसे सहनकर सकते थे कि देवी को प्रसन्न करने के लिए

नरबलि दी जाय। गुरूघासीदास जी ने योजना बनाई और जीवन को दांव पर लगाकर उन्होंने इस प्रथा को समाप्त करने के लिए उपक्रम किया। बस्तर में बाहर से आए, भूले भटके लोगों को पकड़ कर देवी के सम्मुख बलि चढ़ा दी जाती थी। घासीदास जी ने स्वयं को इस निमित्त पकड़वाने का निश्चिय किया। अकेले ही बस्तर प्रवास पर निकले नरबलि के शिकारियों ने घासीदास जी को पकड़ लिया।

निश्चित तिथि को दंतेवाड़ा स्थित दंतेश्वरी मंदिर में रात्रि को घासीदास को छोड़ दिया गया। खिड़की दरवाजे बंद कर दिये गये (परीक्षा की घड़ी सम्मुख थी। घासीदस जी घबराये नहीं, उन्हें तो इसी अवसर की प्रतीक्षा थी। अहिंसा के पुजारी ने अहिंसा की प्रतिष्ठा के लिए जीवन दांवपर लगाया था। दंतेवाड़ा के मंदिर में उस रात्रि क्या हुआ। इसका कोई प्रत्यक्ष दर्शक नहीं था। गुरू घासीदास जी के साथ क्या बीता कोई नहीं बता सकता। गुरू घासीदास आत्म प्रचार से दूर होने के कारण स्वयं कुछ नहीं बतलाए। छत्तीसगढ़ पर शोध कार्य करने वाले शोधार्थी यह लिखकर लेखनी बंद कर देते हैं गुरू घासीदास अपने उपदेश देते एक बार बस्तर दंतेवाड़ा पहुंचे वहां दंतेश्वरी माता की प्रसिद्धि थी। वहां नरबलि दी जाती थी। घासीदास को नरबलि के लिए उस देवी के मंदिर में पहुंचा दिया गया। देवी दंतेश्वरी ने वह नरबलि स्वीकार नहीं की। (एन.एस. पटेल छत्तीसगढ़ में सांस्कृतिक आंदोलन। ओम प्रकाश दुबे छत्तीसगढ़ की धार्मिक स्थिति 1820-1920 ई.पू.124)

देवी ने नरबलि स्वीकार नहीं की यह वाक्य समूह भ्रम की स्थिति पैदा करता है। देवी उसी बलि को अस्वीकार करती है जिसका अंग भंग हो। ऐसी पुरातन मान्यता है। यह सर्वज्ञात है कि गुरू घासीदासका कोई अंग खंडित नहीं था। देवी ने नरबलि स्वीकार नहीं की इसके पीछे क्या करण थे ? इस संबंध में साक्ष्य नहीं मिलते लोक -स्मृति की मंजूषा में संजोकर रखे गए विवरण से परिज्ञात होता है, गुत्थी सुलझती है।

बस्तर में प्रचलित विवरण के अनुसार देवी दंतेश्वरी माई के सम्मुख नरबलि के लिए चरवाहा को प्रस्तुत किया गया ( उल्लेखनीय है कि गुरु घासीदास ने न तो पहले और न बाद में अपना परिचय दिया था । उसके पास गाय बांधने की एक रस्सी मात्र थी। इसी आधार पर उन्हें चरवाहा प्रचारित किया गया। चरवाहा ने देवी को, साक्षात मृत्यु को सम्मुख पाया लेकिन उसने आत्म संयम नहीं खोया। जैसे ही देवी उसके पास पहुंची चरवाहे ने अपनी रस्सी देवी की कमर के चारों ओर लपेट दी और मथना शुरू किया। देवी को रस्से के घर्षण से गुदगुदी होने लगी वह इधर उधर होने लगी। चरवाहे ने मजबूती से रस्से को थाम रखा था। चरवाहा जानता था कि रस्सी छूटी याने मृत्यु। रस्सी से मथने की

प्रक्रिया रात भर चलती रही। देवी गुदगुदी से परेशान होती रही अंतमें देवी ने गुरू घासीदास को **अभय वरदान देकर कुछ मांगने को कहा**। चरवाहे को इसी अवसर की प्रतीक्षा थी। उसने अपने लिये कुछ नहीं मांगा, समस्त, मानवता के नाते उसने देवी से **नरबलि न लेने का वचन मांगा**। देवी ने वरदान देने का वचन दिया था। उसे चरवाहे की बात स्वीकार करनी पड़ी। बस्तर के लोग माई दंतेश्वरी की प्रतिमा दिखलाते हुए कमर की ओर इंगित करके कहते हैं उस रात्रि के घर्षण से ही देवी की कमर पतली हो गई है।

बस्तर के आदिवासी अपनी समझ से उसरात्रि के वृत्तांत को प्रस्तुत करते हैं. वास्तव में यह सांकेतिक विवरण है। गुरू घासीदास उस रात्रि देवी के सम्मुख उपस्थित हुए और किसी तरह देवी को नरबलि न लेने हेतु राजी कर लिया।

गुरू घासीदास का बस्तर के लिए, मानवता के लिए यह सौगात था जो कार्य देवी के पति भी नहीं कर सके उसे छत्तीसगढ़ के संत घासीदास ने अपना जीवन दांव पर लगाकर कर दिखाया।

दंतेवाड़ा के मंदिर में घटित उपरोक्त घटना कब घटित हुई इसके संबंध में निर्णय तक पहुंचने में कुछ संकेंत सूत्र सहायता पहुंचाते है। आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने **उत्तर भारत की संत परंपरा** नामक ग्रंथ में लिखा है संत गुरू घासीदास पहले जरूर गृहस्थ जीवन बिताए है किन्तु 40-50 वर्ष उम्र के बाद से विरक्त संत के रूप में जंगलों में बिहार करते थे। इस विवरणके आधार पर गुरू घासीदास जी के दंतेवाड़ा प्रवास की तिथि के बारे में जाना जा सकता है। गुरू घासीदास जी की जन्म तिथि के संबंध में 18 दिसम्बर 1756 ई. मान्य की गई है। 1756 में 50 वर्ष जोड़ने पर 1806 ई. बनता है। छत्तीसगढ़ में अपने सतनाम ग्रंथ के प्रचार प्रसार में उन्होने प्रारंभिक चार वर्ष लगाया होगा। **सन्1810 के आसपास दंतेवाड़ा प्रवास किया होगा**। इस संबंध में पर्याप्त शोध की आवश्यकता है।

गुरूघासीदास जी ने सतनाम पंथ का प्रचार बस्तर में कम किया। उनका दंतेवाड़ा प्रवास मुख्य रूप से देवीसे रूबरू होकर उन्हें नरबलि न लेने हेतु तैयार करना था। गुरू घासीदास द्वारा किया गया यह अतुलनीय कार्य था। इतिहास में अपने ढंग का अकेला प्रमाण मिलता है। **जब किसी संत ने अपना जीवन जोखिम में डालकर नरबलि जैसे सामाजिक बुराई को समाप्त किया।**

-00-

## अध्याय -10

# युग पुरूष गुरू घासीदास

पंखे के आकार का अंचल छत्तीसगढ़ 1 नवम्बर 2000 से नये राज्य के रूप में अस्तित्व में आ चुका है। वर्तमान में इस राज्य में रायपुर, बिलासपुर व बस्तर तीन राजस्व संभाग और सोलह जिले आते है। यह अंचल पौराणिक काल से चर्चित वर्णित रहा है। अंचल की महान विभूतियां की गणना में गुरू घासीदास जी अग्रगण्य हैं। इस महान सुधारक की याद में बिलासपुर में स्थापित विश्वविद्यालय का नामकरण किया गया हैं। भारत सरकार ने भी इनकी स्मृति में विशेष डाक टिकट जारी कर अपने श्रद्धा सुमन अर्पित किए हैं। स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात भारत में भी आंचलिक इतिहास लेखन की नई प्रक्रिया बलवती हुई है। इस प्रवृत्ति में अनेक आंचलिक घटनाओं व व्यक्तित्वों को विशेष प्रचार प्रसार दिया हैं।छत्तीसगढ़ अंचल के गुरूघासीदास, शहीद वीरनारायण सिंह, बस्तर के गुन्डाधुर के बारे में और अधिक शोध एवं अन्वेषण की आवश्यकता है। जो प्रसिद्धि इन तीनों को काफी पहले मिल जानी थी वह देर से सही मगर सही ढंग से मिल रही है यह संतोष की बात है।

युग पुरूष समय की मांग होते है।गुरू घासीदास का आविर्भाव जिन दिनों हुआ उन दिनों छत्तीसगढ़ अंचल पर मराठों का राज था। देश के कतिपय भागों में अंग्रेजी राज की पृष्ठभूमि बन रही थी। अराजकता, अनेकता व कुशासन से लोग त्रस्त थे। शुद्ध लाभ कमाने के उद्देश्य से अंचल में सूबेदारी शासन व्यवस्था स्थापित की गई थी। अधिक से अधिक राजस्व की वसूली करना क्षेत्र की जनता का शोषण करना ही शासन का मुख्य लक्ष्य था। छत्तीसगढ़ की शांति व व्यवस्था प्रेमी जनता पीड़ादायक स्थिति से गुजर रही थी।मध्यकालीन भारत में जिस प्रकार से भक्ति आंदोलन ने हारी थकी जनता में निराशा के भाव दूर कर आशा की किरण जगाई थी वैसे ही गुरू घासीदास और उनके सतनाम पंथ नें छत्तीसगढ़ में आशा की किरण जगायी। सांस्कृतिक पुनरूत्थान की कड़ी के रूप में इसे रेखांकित किया जा सकता है।

18 दिसम्बर 1756 ई. को माघ मास की पूर्णिमा को प्रातः 4 बजे एक बालक का जन्म ग्राम गिरौदपुरी में हुआ। पिता का नाम महंगूदास व माता का नाम अमरौतीन था । जन साधारण को ज्ञात नहीं हो पाया मगर एक साधु की सूक्ष्म दृष्टि ने बालक को देखकर स्पष्ट भविष्यवाणी कर दी थी कि बालक भविष्य में बहुत नाम कमायेगा। गरीब परिवार में जन्में बालक के संबंध में साधु की इस भविष्यवाणी को लोगों ने गंभीरता से नही लिया। सूर्योदय से सूर्यास्त तक जीविका निर्वाह के लिए खटकते रहने की नियति गरीब बालक की होती है। यही बालक दलितो के मसीहा, सतनाम पंथ के प्रवर्तक के रूप में छत्तीसगढ़ की महान विभूतियों में गिना जावेगा इसकी कल्पना भी किसी ने नहीं की थी ।

गुरूघासीदास के व्यक्तित्व एवं कृतित्व की तुलना अन्य अंचलों के महान संतो से करने पर यह तथ्य ज्ञात होता है कि जो प्रसिद्धि पंजाब में गुरूनानक देव को महाराष्ट्र में संत ज्ञानेश्वर को, गुजरात में नरसिंह भगत को और बंगाल में चैतन्य महाप्रभु को प्राप्त हुई वहीं प्रसिद्धि छत्तीसगढ़ अंचल में गुरूघासीदास को प्राप्त हुई है । गुरू नानक की भांति ये भी बचपन से साधु प्रवृति के धर्मशील थे। चिन्तन मनन में रत रहने वाले निर्धन घसिया (बचपन का नाम ) अपने जैसे लोगों की मुक्ति के लिए छटपटाते रहते थे। वे कोई ऐसा मार्ग तलाशते रहते थे जिस पर चलकर व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का विकास कर समाज को आगे बढ़ा सके। इतिहास इस बात की साक्षी है कि महापुरूषों को पहले आत्मबोध होता है, आत्मबोध से आत्मशक्ति बढ़ती है और आत्मशक्ति से संचालित महापुरूष आत्मसंतोष एवं जग कल्याण के लिए कष्ट सहन करते हुए ऐसा मार्ग प्रशस्त करते हैं कि जिस पर चलकर पीड़ित मानवता को राहत मिलती है , जीने का संबल मिलता है। गुरू घासीदास के जीवन वृतांत को पढ़ने से यही तथ्य पुनः पुष्ट होता है।

गरीब परिवार में जन्मे बढ़े घासीदास जी ने गरीबी को , गरीबी की विभीषिका को स्वयं भोगा था। समता विहीन समाज में ऊंच -नीच के भेदभाव कैसे -कैसे गुल खिलाते हैं इसे देखा था। गरीबी, भूखमरी, प्रताड़ना, शोषण, जातिगत भेदभाव जनित अपमान से मुक्ति दिलाने के लिए उनका मन अशांत रहता था । व्यथा की कथा किसी से उन्होंने सुनी नहीं थी , स्वयं वर्षो व्यथित हुए थे। अन्य महापुरूषों की भांति ही घासीदास जी का बचपन कष्ट व पीड़ा में व्यतीत हुआ। गरीब बालक का विवाह सिरपुर के सफुर नामक कन्या से हुआ।

दुख है और दुख से मुक्ति का मार्ग भी है गुरू घासीदास के मन के शांति के लिए, सतनाम के तलाश में निकले। मन की शाांति के लिए तीर्थाटन प्राचीन परंपरा रही

है। घासीदास जी नें पूर्वी भारत के प्रसिद्ध तीर्थ जगन्नाथपुरी की यात्रा का निश्चिय किया। उन दिनों छत्तीसगढ़ अंचल में आवागमन के साधनों का अभाव था। लोग प्रायः पैदल ही यात्रा करते थे , साधन संपन्न बैलगाड़ियों से आते जाते थे। घासीदास साधन विहीन थे अतः पैदल ही पुरी की यात्रा पर निकले। पैर रास्ता नाप रहे थे मगर मन मुक्ति का मार्ग तलाश रहा था। घासीदास बढ़ते -बढ़ते **सारंगढ़** (जिला रायगढ़ ) तक पहुंचे। सारंगढ़ में उन्हें आत्मबोध हुआ। तीर्थ यात्रा अनर्थक लगा। सतनाम की मणि उन्हें सारंगढ़ ने प्राप्त हुई। सारंगढ़ से सतनाम सतनाम रटते हुए घासीदास जी वापस अपने गांव लौटे। घासीदास के जीवन वृतांत में सारंगढ़ प्रवास का ऐतिहासिक महत्व है। दुर्भाग्यवश अभी तक सतनामी समाज भी सारंगढ़ को महत्व नहीं दे पाया है। सतनामी समाज के अनेक तीर्थ स्थान है, सारंगढ़ को भी इस संदर्भ में स्थान मिलना चाहिए।

घासीदास ज्ञान की प्राप्ति के साथ ही असाधारण हो गए। ईश्वर ने उन्हें प्रभावशाली व्यक्तित्व दिया था। छः फुट लंबाई वाले, सुडौल गठीले बदन वाले, गौरवर्णीय, शांत सौम्य चेहरा, हीरे जैसी चमक वाली आंख-कुल मिलाकर घासीदास का बाह्य व्यक्तित्व चुंबकीय था। व्यक्ति देखते ही प्रभावित व आकर्षित हो जाता था। रही सही कसर ज्ञान चक्षु के खुलने ने पूरी कर दी। तीर्थाटन की अनावश्यकता महसूस करने के पश्चात घासीदास अपने सतनाम पंथ के प्रचार प्रसार में लगे। उनके शिष्यों की संख्या बढ़ती गई। सत्य की गहराई में उतरने के लिए, आत्मशक्ति की प्राप्ति के लिए उन्होंने 6 माह तक एकांत में चिन्तन मनन करने एवं सत्य से साक्षात्कार करने में लगाया। गुरू की साधना अवधि में शिष्यों ने अनवरत प्रचार प्रसार का कार्य जारी रखा। 6 माह पश्चात नियत तिथि को गुरू घासीदास जी को जन समूह के सम्मुख उपस्थित होना था। गिरौदपुरी में उन्हें उपस्थित होना था महात्मा बुद्ध ने जिस प्रकार से बोध गया में वट वृक्ष के नीचे ज्ञान की प्राप्ति की थी उसी प्रकार घासीदास जी को गिरौदपुर से डेढ़ कि. मी. दूर स्थित पहाड़ी के एक तेन्दू वृक्ष के नीचे सत्य ज्ञान की प्राप्ति हुई थी। आज भी तेन्दु वृक्ष सतनामियों के लिए पूज्य वृक्ष है, ज्ञान प्राप्ति का वह स्थल पूज्य हैं ।

6 माह पश्चात ईश्वर वाणी लेकर गुरू लौट रहे हैं इस प्रचार- प्रसार ने श्रद्धालु लोगों को गिरौदपुर पहुंचाया। हजारों की संख्या में पैदल, बैलगाड़ी में, पालकी में जिसे जो साधन मिला उसमें लोग नियत तिथि, नियत समय व नियत स्थल में उपस्थित हुए। गुरू की अलौकिक छबि, ज्ञानमंडल युक्त चेहरा देखने के लिए लोग व्यग्र थे। उषाकाल में

गिरौदपुरी के जंगल की ओर से अपने मसीहा को आते देख पूरी भीड़ आश्चर्यचकित हो, अनिमेष नेत्रों से अपलक, सांस रोके देखने के लिए मचल उठी। गुरू ज्ञान प्राप्त कर, ईश्वर वाणी ले सत पंथ को तलाश कर आ रहा था। शिष्यों को अपने गुरू की महत्ता का दिग्दर्शन हुआ।

सतनाम पंथ के प्रवर्तक गुरू घासीदास थे , उनके प्रति सम्मान प्रकट करने के लिए उनके नाम के सम्मुख गुरू या बाबा शब्द लगाया गया है। गुरू ज्ञान देता हैं, घासीदास ने ज्ञान दिया, बाबा परिवार में ममता व संरक्षण देता है घासीदास जी ने भी अपने अनुयायियों को ममता एवं सरंक्षण दिया। डेढ़ करोड़ से अधिक लोग सतनाम पंथ पर अग्रसर है। गुरू का पंथ सहज, सरल है, भारतीय परंपरा के अनुरूप है। **ट्रूथ इस गाड- सत्य ही ईश्वर है** यह गुरू ने न केवल प्रतिपादित किया वरन प्रचारित प्रसारित भी किया। सतनाम ही ईश्वर है मूर्ति पूजा की मनाही मांसाहार, जीव हत्या की मनाही, जाति प्रथा निषेध, मद्यपान निषेध धूम्रपान निषेध, परनारी को माता, बहन मानना, खेती में गाय भैंस का प्रयोग न करना, मितव्ययिता, जुआ खेलने की मनाही, असत्य वचन की मनाही, चौर कर्म न करना संक्षेप में सतनाम पंथ है। गुरू घासीदास की यह सीख समयोचित है

मंदिर मस्जिद गुरू द्वारा या संत द्वार बनाहा

मोर मन में नित असन भावना

तोला बनायेच बर हे त जलाशय बना

दरिया बना, कुंआबना, धर्मशाला बना

दुर्गम ला सरल बना।

गुरूघासीदास और उनके द्वारा प्रवर्तित सतनाम पंथ ने छत्तीसगढ़ के समाज में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। सहज मार्ग, सरल मार्ग होने के कारण यह लोगों को अपनी ओर आकर्षित करने में सफल रहा है। इसाई मिशनरियों के जाल में फंसने से बचाने में यह सतनाम पंथ कारगर साबित हुआ है। समता विहीन समाज में सांस्कृतिक क्रांति के माध्यम से ही शांति व व्यवस्था स्थापित हो सकती है। श्वेतध्वज युक्त जैत खाम गांव -गांव में गुरू के अनुयायियों के अस्तित्व को दिगदिगंत में फैलाता है।

--००--

## अध्याय -11

# एक सुरम्य घाटी - केशकाल

प्रकृति की मनोहारी छटा आदिकाल से मानव को आकर्षित करती रही है। नदियां, पर्वत, झीले तो लुभावने होती ही है। घाटियों का आकर्षण भी कम नहीं रहता। भारत पर प्रकृति की महती कृपा रही है। छत्तीसगढ़ अंचल में भी ऐसे अनेक प्राकृतिक दृश्य है जो पर्यटकों को सम्मोहित करते है। चिल्फी घाटी,अमरकंटक की घाटी के साथ-साथ बस्तर की केशकाल घाटी भी उल्लेखनीय घाटी है। यह सत्य है कि ससांर की प्रसिद्ध घाटियों में इसका उल्लेख नहीं होता. बस्तर घाटियों का प्रदेश है , मनोरम, खूबसूरत, मनभावन घाटियां बस्तर प्रवासियों को ऐसी स्मृति दे जाती है, जिन्हें आजीवन भुला पाना कठिन है.

केशकाल की घाटी राष्ट्रीय राजमार्ग क्रमांक 43 पर पड़ती है। रायपुर को विशाखापटनम से जोड़ने वाला यह मार्ग बस्तर के उत्तरी भाग से होकर गुजरता है। कांकेर से जगदलपुर की ओर बढ़ने पर यह घाटी पड़ती है। घाटी की कुल लम्बाई लगभग पांच किलोमीटर है। बस्तर के आकर्षण से चुम्बक की भांति खींचे आने वाले पर्यटकों की उत्सुकता भरी निगाहें केशकाल की मनोरम वादियों पर दृष्टिपात करते ही प्रसन्नता व संतुष्टि के भाव से विभोर हो उठती है। बस्तर का प्रवेश द्वार केशकाल की घाटी है। प्रवेश द्वार ही जब इतना मोहक, नयनाभिराम है तो पूरा बस्तर कितना मोहक होगा? यह उत्सुकता लिए पर्यटक आगे बढ़ता है।

केशकाल की यह घाटी समुद्र सतह से 728 मीटर की ऊंचाई पर है। घाटी के नीचे स्थित कांकेर का भाग 400 मीटर की ऊंचाई पर है।इस गणित की दृष्टि से देखने पर ज्ञात होता है कि कांकेर की तुलना में 328 मीटर की अधिक ऊंचाई पर केशकाल कस्बा व विकासखंड मुख्यालय स्थित है। प्रमाण तो नहीं दिया जा सकता मगर एक तर्क यह भी बनता है कि जीवन और मृत्यु के मध्य केश (बाल) की दूरी रहने के कारण इस घाटी का नामकरण केशकाल पड़ा होगा। बस्तर में यूं तो अनेक घाटियां है और उन घाटियां का भी अपना महत्व व आकर्षण है जैसे दरभाघाटी, रावघाट आदि, मगर प्राकृतिक सुषमा की दृष्टि से केशकाल की घाटी पहले नंबर पर आती है। चाहे सूर्य की प्रखर रोशनी में घाटी पर विहंगम दृष्टि डालें चाहे चारू चन्द्र की चंचल किरणों में, केशकाल की घाटी का मोहक रूप ही दिखलायी पड़ता है। एक ओर ऊंची पर्वत श्रेणी तो दूसरी ओर अतल गहराई के मध्य सर्पाकार, बलखाती, इठलाती जारी सड़क। प्रकृति के दार्शनिक पहलू को उजागर करती, जीवन और मृत्यु के बीच मानव जीवन सरिता के, प्रवाह को परिभाषित करती यह घाटी मूक संदेशा देती है कि हर चढ़ाई का कहीं न कहीं अंत होता ही है।

पराधीन भारत में 555 देशी रियासतें थी इनमें से चौदह छत्तीसगढ़ में अवस्थित थी। बस्तर व कांकेर इनमें से दो थी .इन दोनों रियासतों की सीमा पर यह केशकाल घाटी स्थित थी। घाटी चढ़ते ही बस्तर रियासत की सीमा प्रारंभ हो जाती थी। घाटी की कुल लम्बाई लगभग पांच कि.मी. है और इस पर दस हेयर पीन आकार के खतरनाक मोड़ है, चाहे घाटी से उतरते रहे, चाहे घाटी चढ़ते रहें, दोनों ही अवसरों पर जीवन और मृत्यु के मध्य केश भर का अंतर रहता है। घाटी का एक-एक मोड़ पार करते ऐसा प्रतीत होता है

मानो मृत्यु के एक-एक वार से बचते जा रहे हैं। केशकाल से रायपुर की ओर आते समय दो किलोमीटर पश्चात ही घाटी प्रारंभ हो जाती है। सर्पाकार घाटी अब तो काफी चौड़ी हो गई है मगर इस शताब्दी के पूर्व यह स्थिति नहीं थी। **वन वे ट्रैफिक था**, घाटी उतरने वाले सभी वाहन एक के पीछे एक उतरते थे फिर चढ़ाई वाले वाहन रवाना होते थे। बीच में ऐसी कोई जगह नहीं थी, जहां से दो वाहन एक साथ गुजर सके। आज तो मानव मस्तिष्क ने मशीनों की सहायता से पर्वतों को काटकर खाइयों को पाटकर सड़कों को चौड़ा कर दिया है। केशकाल की घाटी आज प्रायः सभी स्थलों पर इतनी चौड़ी हो गई है कि एक साथ दो वाहन आसानी से गुजर सके।

केशकाल की घाटी के मध्य में **तेलीन माता का मंदिर है**, कुछ लेखकों के अनुसार यह कुंअरपाट देवी की गुड़ी है,इस देवी के चमत्कारों के अलग-अलग विवरण प्राप्त होते हैं मगर सचाई सांकेतिक है। तेलीन माता के मंदिर के कारण ही घाटी का एक नाम तेलीन घाटी पड़ गया है। अंग्रेजी के ''यू'' आकार या घोड़े के नाल के आकार की यह घाटी कोहनी नवान मोड़ों वाली है। घाटी पर स्थित तेलीन माता का मंदिर अनास्था पर आस्था की विजय का सूचक है। जहां-जहां भी भय, आतंक व अनहोनी की आशंका रहती है वहां-वहां मंदिरों, मठो की स्थापना की गई है। परिवहन जगत से जुड़े लोगों की अपनी आस्थायें होती है। शिलाखंडों को देव-देवी का प्रतीक बनाकर पूजाअर्चना प्रारंभ की जाती है। परिवहन व्यवसाय से जुड़े मालिकों, चालको व परिचालकों ने प्रायः भारत भर की घाटियों के प्रारंभ, मध्य या अंत में ऐसे मंदिर स्थापित कर रखे है जो लोगों के आस्था चरण डिगाने से बचाते है। केशकाल की घाटी भी इसका अपवाद नहीं है। केशकाल की घाटी ने भी हल्दी घाटी जैसी प्रसिद्धि प्राप्त की होती यदि 1910 ई. के सशस्त्र संघर्ष के नेताओं ने दूर दृष्टि से कार्य किया होता। बस्तर-बस्तर में रहने वालों का है इस उद्देश्य को लेकर सशस्त्र संघर्ष प्रारंभ करने वाले सीधे साधे, भोले भाले बस्तर के आदिवासियों ने अंग्रेजों से टक्कर ली थी। यह लड़ाई शीशे और पत्थर की लड़ाई थी जिसमें शीशा चाहे पत्थर से टकराता,चाहे पत्थर शीशे से, चूर-चूर तो शीशे को ही होना था। 1910 का यह संघर्ष इतिहास में और अधिक महत्व पाता यदि इसके नेता केशकाल की घाटी को (एक किले के रूप में) सुरक्षा ढाल के रूप में अपनाते। बस्तर में , रायपुर की ओर से प्रवेश का एक मात्र, मार्ग यही से होकर गुजरता था। यदि इस घाटी की नाकेबंदी कर दी गई होती, तो अंग्रेजी सेना का बस्तर प्रवेश विलंबित किया जा सकता। इस संघर्ष को दबाने के लिए जो अंग्रेज सैन्य अधिकारी बस्तर गए थे उन्होंने भी अपनी रिपोर्ट में केशकाल घाटी की नाकेबंदी न किये जाने पर आश्चर्य प्रकट किया है। केशकाल की घाटी के महत्व को घटाया नहीं जा सकता। इसी घाटी के कारण बस्तर सदियों सेउत्तर कीओर से आक्रमणकारियों से लगभग सुरक्षित रहा, '' बस्तर का प्राकृतिक सौन्दर्य मुझे कई वर्षों से अप्सरावत लुभाता आया है।'' बसंत पोतदार ने अपने एक लेख में जो लिखा है वह अक्षरशः सही है। केशकाल की घाटी का सौन्दर्य अविस्मरणीय है। छत्तीसगढ़ का यह प्राकृतिक सौन्दर्य अनुपम है। केशकाल की घाटी छत्तीसगढ़ी हाना (कहावत) में स्थान प्राप्त कर चुकी है। दृष्टव्य है -

सात भांवर में डौकी आथे  
कहियो आव न जाव।  
बारह भांवर केशकाल के होई न एक बिहाव

## अध्याय-12

# बस्तर की जातीय पंचायत

बस्तर जिला शोधार्थियों के लिए कलम व कैमरे का केन्द्र रहा है। अपनी आस्थाओं, संस्थाओं व व्यवस्थाओं की रक्षा के उद्देश्य से अनुसूचित जनजाति के लोगों ने मैदानी, उपजाऊ भाग छोड़कर जंगलों व पहाड़ों में जा बसना स्वीकार किया, 1991 ई. कीजनगणना के अनुसार बस्तर जिले में इस वर्ग के लोगों की संख्या 15, 29, 888 है। उल्लेखनीय हैकि बस्तर की कुल जनसंख्या-22,71,314 है, इस प्रकार स्पष्ट रुप से आदिवासी बहुल जिले के रूप में बस्तर का उल्लेख होता है। $17^0 46''$ से $20^0 34''$ उत्तरी अक्षांश और $80^0 15''$ से $82^0 15''$ पूर्वी देशांश के मध्य यह जिला स्थित है। बस्तर में शासकीय व्यवस्था के तहत स्थापित पंचायतों की संख्या 1003 है।

समाज शास्त्रियों के अनुसार जातीय पंचायतें "जाति के नियम, जाति का परंपरागत कानून जो जाति पंचायत द्वारा लागू किया जाता है। जाति पंचायत कुछ वंशानुगत अधिकारियों का संगठन है। जातीय तथा अंतर जातीय व्यवहार व संबंधों के नियमों पर परंपरा से जातीय पंचायत को विधायी, न्यायिक तथा कार्यकारी अधिकार मिले हैं - गौरी शंकर भट्ट ने जातीय पंचायतों के संबंध में संक्षेप में उपरोक्त बातें लिखी है। आदिम समाज व आधुनिक समाज में मूलभूत अंतर यहीं पर परिलक्षित होता है। विधायी, कार्यकारी व न्यायिक तीनों शक्तियों को रखते हुए भी आदिम जातीय पंचायतों ने तानाशाही का प्रदर्शन कभी नहीं किया, अपनी शक्तियों का दुरुपयोग नहीं किया,यही वह वजह है कि शताब्दियों पर शताब्दियां व्यतीत हो गई मगर जातीय पंचायतों का अस्तित्व था, वर्तमान में भी है। और इसी गुण के कारण भविष्य में भी रहेगा। जातीय पंचायतों की शक्ति जन समर्थन है। जन-आवश्यकता की पूर्ति यह संस्था करती है, जन आवश्यकता ही इसके भविष्य का भी निर्धारण करेगा। तथाकथित सभ्य समाजों की सरकारें पंचायती राज स्थापित करने की कोशिश में है समाज के एकदम निचले स्तर की जनता को असली शक्ति, असली अधिकार, असली साधना, असली जिम्मेदारी सौंपना लक्ष्य रखा गया है।पंचायती राज स्थापित कर जिन उद्देश्यों की पूर्ति हम करना चाहते हैं, उस प्रकार की पंचायतें तो बस्तर में अनादिकाल से है।

भारत में पंचायतों का इतिहास काफी पुराना है, पंचायतों की लंबी परंपरा रही है। पंचों के मुख से परमेश्वर बोलता है यह धारणा बद्धमूल है। बस्तर में पंचायतें अपनी जड़े जमा चुकी है। आदिम समाज की सर्वाधिक उल्लेखनीय विशेषता के रूप में इन पंचायतों को प्रस्तुत किया जा सकता है। शिलालेखों के आधार पर प्रमाण चाहने वालों के लिए

नागवंः ो शासकों के काल का दंतेबाड़ा शिलालेख उल्लेखनीय है। बस्तर के तत्कालीन नाग नृपति .ाजभूषण महाराज की छोटी बहन का नाम **मासक देवी** था। मासक देवी ने इस शिलालेख के द्वारा यह घोषणा करवायी, घोषणा राज परिवार की ओर से थी मगर इसे पांच बड़ी पंचायतों ने पारित किया था -"राजतिलक के अवसर पर बहुत पहले से निवास कर रहे किसानों से ही विशेष कर लेने का ऐलान किया गया।" बारहवीं शताब्दी का यह शिलालेख उस शताब्दी में बस्तर में पंचायतों की सुदृढ़ स्थिति का परिचायक है। बारहवीं शताब्दी में पंचायतों की सहमति के बिना कर लगा सकने के राजा की शक्ति पर प्रतिबंध रेखांकित किये जाने वाली व्यवस्था है। सभ्यता की दौड़ में जिस बस्तर को हम बहुत पीछे मानते हैं उस बस्तर में आज से 850 वर्ष पूर्व सुदृढ़ पंचायतों का अस्तित्व हमारी सोच पर प्रश्न वाचक चिन्ह लगाता है।

एक अंग्रेज प्रशासनिक अधिकारी सर चार्ल्स मेटकाफ ने भारत की पंचायती व्यवस्था को न प्रभावित करने की बुद्धिमतापूर्ण राय दी थी परंतु अंग्रेजी शासन व्यवस्था भारत में भारतीयों पर कतई भरोसा न करने की नीति पर चल रही थी।शासन का काम यथासंभव अधिकाधिक राजकर्मचारियों के हाथों में ही रखने की नीति पर चलते उन्होंने भारतीय पंचायत व्यवस्था पर प्रहार किया। परंपरा से चली आ रही पंचायतों की शक्ति को घटाया गया उन्हें सरकारी मोहताज बनाया गया। गांधी जी ने स्वदेशी का आंदोलन चलाया तब पुनः इस प्राचीन व्यवस्था को शक्ति देना लक्ष्य रखा गया। महात्मा गांधी का पंचायती राज्य का स्वप्न आज भी पूरा नहीं हो पाया है। स्वाधीन भारत की सरकार ने पंचायतों में एकरूपता लाने के उद्देश्य से अधिनियम बनवाये मध्यप्रदेश पंचायत अधिनियम 1962 उसी का प्रतिफल था। बस्तर व अन्य आदिवासी बहुल इलाकों में कार्यरत जातीय पंचायतों को इस अधिनियम के अंतर्गत लाया जाय की नहीं यह विशेष चर्चा का विषय था अंततः संपूर्ण बस्तर जिला व रायगढ़ जिले की जशपुर तहसील को इससे अलग रखा गया। 23 जुलाई 1962 ई. को उपरोक्त दो क्षेत्रोंको छोड़कर शेष सम्पूर्ण प्रदेश में यह अधिनियम लागू किया गया। अधिनियम में उल्लेख है -"मध्यप्रदेश राज्य में अनेक क्षेत्र ऐसे है जिनके अधिकांश निवासी अनुसूचित जनजाति के सदस्य है उन्हें आदिवासी क्षेत्र कहते है। आदिवासियों द्वाराआज भी अपने परंपरागत पंचायतों को मान्यता दी जाती हैऔर वे अपनी निजी रूढ़ियों औ विशेषताओं को बनाए हुए हैं, वे अपनी प्राचीन परंपराओं को छोड़ना नहीं चाहते, इसलिए उन क्षेत्रों में जहां अनुसूचित जनजातियों का ही बहुमत है, विशेष पंचायतों की व्यवस्था होने का उपबंध है उनका दूसरा स्तर रखा गया है- परगना पंचायत (पंचायत अधिनियम 1962 आठवां अध्याय धारा 90)

विशेष पंचायतों की यह व्यवस्था 15 अगस्त 1975तक चलती रही। 1979 ई. में नई व्यवस्था के तहत बस्तर में पंचायतों के चुनाव हुए। वर्तमान में बस्तर में दोनों प्रकार की पंचायतें कार्यरत है - पंचायतों को सुविधा की दृष्टि से शासकीय पंचायत और जातीय पंचायत नाम दिया जा सकता है।

बस्तर में परंपरा से जातीय पंचायतें स्थापित है। राज्यसभा की भांति यह एक स्थायी निकाय है। इसके किसी पदाधिकारी की मृत्यु होने पर उसके स्थान पर नया पदाधिकारी चुन लिया जाता है। अंचल में शांति व व्यवस्था स्थापित रखना इन जातीय पंचायतों का विशेष दायित्व है। आदिम समाज अपनी आवश्यकताओं को बखूबी समझता है। आदिम समाज की समस्याएं भी अलग ही प्रकार की होती है, जिनका समाधान भी वे अपने ढंग से करते आ रहे हैं। जातीय पंचायतें पूर्ण अधिकार सम्पन्न निकाय होने के कारण शांति व व्यवस्था स्थापित करने में ये कारगार रही है। रियासत कालीन बस्तर में केवल कुछ सौ पुलिस की सहायता से राजा शांति व व्यवस्था स्थापित करने में सफल रहा इसका मूलकारण ये जातीय पंचायते ही थी। जाति के नियमों परंपराओं व आस्थाओं के उल्लंघन को पंचायत गंभीर मामला समझती थी। आदिवासी को न्याय पाने के लिए कहीं दूर जाने की आवश्यकता नहीं थी। लोक अदालतों के द्वारा कम खर्च में,कम समय में कम परेशानी में पड़कर न्याय प्राप्त करने का जो प्रयोग चल रहा है, वह प्रयोग सफलतापूर्वक आदिम समाज परंपरा से करता आ रहा है। **"जस्टिस एट डोर"** आधुनिक न्याय व्यवस्था की नवीनतम तकनीक मानी जा रही है, आदर्श न्याय व्यवस्था के रुप में इसे बहुप्रचारित किया जा रहा है, इस आदर्श व्यवस्था को यथार्थ रुप देने का प्रयास चल रहा है मगर बस्तर के आदिम समाज में यह व्यवस्था पहले से चली आ रही है।

अंग्रेजी न्याय व्यवस्था अपनी व्यवस्था को सर्वोच्च मानने की मदान्धता में भारत में स्थापित बहुत सुन्दर व्यवस्थाओं को नेस्तनाबूद करने में लगी रही। पंचायत व्यवस्था भी इसका शिकार हुई। अंग्रेजी व्यवस्था लागू किए जाने केविरोध में बस्तर के आदिवासियों ने दो बार आंदोलन किया। 1876 ई. में सशक्त प्रदर्शन किया गया और 1910 ई. में सशस्त्र विद्रोह। दोनों अवसरों पर विदेशी व्यवस्था के प्रति नाराजगी अहम मुद्दा था।

जातीय परंपरा के सभी पदाधिकारी वंशानुगत होते है। इस पंचायत का सर्वोच्च अधिकारी **मांझी** होता है। मांझी के अलावा **चालकी** व कुछ पंच भी होते हैं। प्रतिद्वन्द्विता विहीन समाज में पदों का वंशानुगत मिलना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। गांव में एक ही जाति के वयस्क पुरुष एक स्थान पर एकत्र होते हैं और अपने बीच से मांझी का चुनाव करते

हैं। चुना हुआ मांझी जीवन पर्यंत अपने दायित्वों का निर्वहन व अधिकारों का प्रयोग करता है। गांव वालों का पूर्ण विश्वास ही उसके अधिकारों को संबल प्रदान करता है।

जातीय पंचायत की एक और उल्लेखनीय विशेषता सियान लोगों (बुजुर्गों) की इच्छा का सम्मान है। जूरी पद्धति जो चल रही थी लगभग वैसी ही यह व्यवस्था है। जातीय पंचायत न्याय देने का कार्य करती है तब मामले की बराबर सुनवायी इन सियान लोगों की उपस्थिति में होती है। निर्णय देने से पूर्व मांझी व अन्य पंच इन सियान लोगों के दीर्घ कालीन अनुभव का लाभ उठाने के उद्‌देश्य से, इनसे सलाह मश्वरा करते हैं। सियान लोगों की राय को पर्याप्त महत्व दिया जाता है।

जातीय पंचायत का प्रमुख मांझी कहलाता है। इस नामकरण के पीछे कोई कारण है ऐसा प्रमाण नहीं मिलता, हमारा अपना अनुमान हैकि जिस प्रकारसे मांझी नाव का खेवनहार होता है, उसी प्रकार पंचायत का मांझी भी गांव का खेवनहार होता है। सदाचारी, प्रभावशाली, लोकप्रिय व्यक्ति ही मांझी बनता है और पीढ़ी दर पीढ़ी जन आस्था को बनाये रखने का प्रयास मांझी का वंश करता है। जनसमर्थन और जन विश्वास ही मांझी की शक्ति होती है। गांव विशेष की जातीय पंचायत का कार्यक्षेत्र, अधिकार क्षेत्र स्पष्ट रहता है। गांव की पंचायत अपनी भू-सीमा के अन्तर्गत आने वाले मामलों की सुनवायी करती है और निर्णय देती है। दो या दो सेअधिक गांवं के मध्य कोई मामला हो तो उसकी सुनवायी परगना पंचायत में होती है।

जातीय पंचायत की पूरी व्यवस्था परंपरा से निर्धारित है। पदाधिकारियों के चुनाव की चर्चा ऊपर की जाचुकी है। जातीय पंचायत की बैठक बुलाने का आग्रह वादी करता है, उसकी सूचना पर प्रतिवादी को भी एक पक्ष बनाया जाता है और निर्धारित स्थल पर निर्धारित समय पर उसे उपस्थित होनेका निर्देश दिया जाता है। यह निर्देश एक प्रकार से आदेश ही रहता है। पंचायत का चालकी नामक पदाधिकारी मांझी के निर्देश पर सूचनाएं देने लेने का कार्य करता है। जातीय पंचायत की अध्यक्षता मांझी करता है। मांझी की दाहिनी ओर वादी और बांयी ओर प्रतिवादी बैठता है। पंच भी मांझी के आसपास बैठते हैं। गांव का कोई भी व्यक्ति पंचायत की गतिविधि देखने-सुनने का अधिकारी होता है। सुनवायी पूरी तरह से खुले तौर पर होती है। वाद-प्रतिवाद के पश्चात पंचों व सियान लोगों से राय लेकर मांझी निर्णय सुनाता है।

मांझी व पंचायत के निर्णय से असंतुष्ट व्यक्ति के लिए अपील की अदालत परगना पंचायत होती है। परगना पंचायत में सुनवायी होती है, निर्णय दिये जाते हैं। परगना

पंचायत के निर्णय से असंतुष्ट व्यक्ति के लिए अपील की दूसरी अदालत दंतेवाड़ा की परगना पंचायत होती है। माई दंतेश्वरी की शक्तिपीठ होने के नाते दंतेवाड़ा का बस्तर के आदिम समाज में महत्वपूर्ण स्थान है। यहां की देवी को पूरा बस्तर मानता है। इसके परगना मांझी को अन्य मांझियों की अपेक्षा अधिक महत्व प्राप्त है। वर्तमान में बस्तर में सक्रिय राजनीतिक दल **दंतेवाड़ा के परगना मांझी को** अपनी ओर करने केलिए अधिक प्रयास करते है। रियासत कालीन बस्तर में यहां के मांझी को बस्तर राज-दरबार में विशेष महत्वपूर्ण स्थान मिलता था। उसकी सलाह को राजा भी विशेष, महत्व देता था। दंतेवाड़ा की पंचायत से भी असंतुष्ट व्यक्ति बस्तर राजा की अदालत में मामला प्रस्तुत करता था। जातीय पंचायत के ज्ञात इतिहास में ऐसे अवसर बहुत कम आये हैं।

अर्थदण्ड व जाति बहिष्कार ये ही दो मुख्य दंड है जो पंचायत देती है। जल में रहकर मगर से बैर नहीं की जा सकती गांव का आदिवासी अपने समाज से पृथक रहने की कल्पना भी नहीं कर सकता। जातीय पंचायत मुख्य रूप से विवाह, संस्कार, सांस्कृतिक कार्यक्रम, मेले, मड़ई, चोरी, गौ-हत्या, लड़की भगा ले जाना, मारपीट, जैसे मामलों की सुनवायी करता है। इन पंचायतों के निर्णयों पर गौर करने से स्पष्ट हो जाता है कि अशिक्षित आदिवासी मुखिया न्याय देने में कैसे सक्षम है। सामान्य मामलों में अर्थदंड मगर गंभीर मामलों में जाति से बहिष्कृत करने का दंड दिया जाता है। जाति बहिष्कार का दंड मृत्युदंड या आजीवन कारावास जैसा भयंकर दंड है, सर्वाधिक मारक यह दंड होता है। जातीय पंचायत यह बिल्कुल सहन नहीं कर सकती कि जातिगत परंपरायें, रीति रिवाज तोड़े जाय और चोरी तथा ऊपर से सीनाजोरी की जाय।

बस्तर में स्त्री को उसकी सहमति के बिना किसी भी पुरुष के साथ नहीं रखा जा सकता। विवाहिता स्त्री भी असंतुष्ट होने पर पतिगृह त्याग सकती है और दूसरी शादी कर सकती है। ऐसे अवसर पर नये पति को, पुराने पति को वधू कीमत वापस करनी पड़ती है। पंचायत ही यह तय करती है, क्या दिया जाय,कितना दिया जाय और कैसे दिया जाय।

सामूहिक भोज का दंड भी जातीय पंचायत के द्वारा दिया जाता है। सामान्यता अपेक्षाकृत अधिक सम्पन्न व्यक्ति को यह दंड दिया जाता है। मांस-मदिरा व भोज्य पदार्थ की व्यवस्था समाज के सभी व्यक्तियों के लिए करनी पड़ती है। सामूहिक भोज, जब तक नहीं दिया जाता तब तक दंडित व्यक्ति से किसी प्रकार का संबंध नहीं रखा जाता।

जातीय पंचायत के कुछ निर्णय ऐसे रहे है जो विशेष उल्लेखनीय माने जा सकते है।

नारायणपुर तहसील स्थित पवारी गांव के एक युवक और युवती में प्यार हो गया, दोनों ने गांव के पटेल की अनुमति से विवाह कर लिया। पटेल भुराराम को दंडित किया गया क्योंकि ऐसी अनुमति पंचायत ही दे सकती है कोई पदाधिकारी नहीं। 1980 में यह घटना घटित हुई पटेल को जाति से बहिष्कृत किया गया और बाद में सामूहिक भोज देने पर ही उसे पुनः समाज में सम्मिलित किया गया। जातीय पंचायत अपनी अवहेलना नहीं सह सकती।

गौहत्या का एक मामला कांकेर तहसील के ग्राम पलेटा के मंगूल गोड़ का पंचायत के सामने आया।इसे गंभीर अपराध माना गया और मंगलू को सजा दी गई कि वह 16 गांवो में घूम-घूम कर भीख मांगे और खाद्यान सामग्री एकत्र करे।इस सामग्री से पांच अतिथियों को भोजन करवाये। 200 रु. का अर्थ दंड भी उसे दिया गया। गौहत्या को पाप मानते हुए मंगलू को तीर्थयात्रा करने को कहा गया।

नारायणपुर तहसील के ग्राम देवारी में कोलूराम हिड़को नामक व्यक्ति ने छिन्द के एक वृक्ष को काटा। पंचायत ने **फलदार वृक्षों की कटाई पर प्रतिबंध** लगा रखा था। हिड़कों को सत्तर रु. का अर्थ दंड दिया गया। आदिवासी केवल पेड़ काटना जानता है यह आरोप लगाने वालों के लिए उपरोक्त प्रकरण विचार बिन्दु प्रस्तुत करता है।

जातीय पंचायत की महत्ता व मजबूत जड़ों को ध्यान में रखते हुए मध्यप्रदेश शासन ने मांझी व चालकियों को वार्षिक पारिश्रमिक देने की व्यवस्था की है। परगना मांझी को तीन सौ रु. व चालकी को 200 रु. वार्षिक दिया जा रहा है।

बस्तर की जातीय पंचायत को प्रबल बनाना युग की मांग है। समय का तकाजा है यह पुरातन व्यवस्था आतंकवादी गतिविधियों से अंचल को सुरक्षित रखने में कारगर सिद्ध होगी। जन-मान्यता प्राप्त इन संस्थाओं को कमजोर बनाने का प्रयास घृणित है। अवैध पंचायत के रूप में इन्हें बदनाम न किया जाय।ये पंचायतें क्षेत्र विशेष की स्थिति को देखते हुए आउट डेटेड नहीं है। इनकी उपयोगिता कल थी और कल भी रहेगी।

**--00--**

# अध्याय-13

# जनचेतना की संवाहिका मिनीमाता

छत्तीसगढ़ अंचल में सामाजिक सांस्कृतिक क्षेत्र में कार्य करने वालों की कमी नहीं रही हैं। महिला कार्यकताओं की कमी निश्चित रूप से ही हैं। मिनीमाता के रूप में अंचल को एक ऐसी महिला मिली थी जिससे अपेक्षाएं बहुत थी मगर क्रूर काल ने असमय में उन्हे छिन लिया और अंचल को अनाथ बना दिया। समय का चक्र अपनी गति व ताल के साथ घूमता रहता है कभी उन्नति तो कभी अवनति सृष्टि का नियम हैं मगर मिनीमाता के उत्कर्ष की कहानी ऐसी रोमांचक कहानी हैं जिस पर सहसा विश्वास नही होता।

छत्तीसगढ़ के इतिहास में संवत 56 का अकाल एक सीमा रेखा हैं। ई. सन के 1900 वर्ष में यह अकाल कमोवेश संपूर्ण छत्तीसगढ़ में पड़ा था। इस अकाल में सैकड़ो की संख्या में स्त्री पुरूषों को अंचल से पलायन के लिए विवश किया। काल के मारे अभागों में **अघारी सतनामी** भी एक थे जो पंडरिया के पास के **सगीना गाँव** के संपन्न व्यक्ति थे मगर लगातार अकाल के कारण वे भी विपन्न हो गए थे और अपने परिवार के साथ रोजी रोटी की तलाश में गाँव से निकले। इस काफिले के साथ उनकी तीन पुत्रियां **पारवती, मति, चादरमती** भी थी इनमें से मति को इस बात का गौरव प्राप्त है कि उसने मिनीमाता जैसी बच्ची को जन्म दिया। रोजी रोटी की तलाश में निकले इस काफिले के अधिकांश सदस्य आसाम प्रांत में मर -खफ गए। दुख का पहाड़ ऐसा टूटा कि परिवार छिन्न भिन्न हो गया। आसाम के चायबागान के लिए मजदूर तलाशने का कार्य अड़कारी लोग करते थे। ऐसा ही एक अड़कारी अघारी से टकराया और उसे तथा उसके परिवार को आसाम चलने के लिए प्रेरित किया। तेजपुर के पास दोलगांव पहुंचकर यह काफिला बंधक हो गया। चाय बागान के मालिको के चंगुलमें जो एक बार फंस जाता था वह निकल नहींपाताथा। मिनीमाता की मां मती दस वर्ष की अवस्था में अनाथ दीन हीन हो गई खाने पीने, सोने-बैठने का कोई ठिकाना नही था। अनजान लोगो के बीच कोई मौसी, तो कोई बहन बनी और जीवन संघर्ष के कठिन दौर से मती गुजरते गुजरते कब जवान हो गई उसे ज्ञात नही हुआ अजेंग नामक करेन जाति के युवक से मती का विवाह हुआ। गोरे रंग की मती और गोरे रंग का अजेंग- संतान को गोरा होना ही था। दो बच्चे अकाल मृत्यु को प्राप्त कर गए थे **तीसरी संतान के रूप में मिनीमाता** का जन्म हुआ

फागुन का महिना हिन्दू सांस्कृतिक परंपरा मे महत्वपूर्ण माह माना जाता हैं। वर्ष का अंतिम माह **होलिका दहन की रात्रि में मिनीमाता का जन्म हुआ**। ईश्वर नें मानों मूक संदेशा देते हुए उसे ऐसी रात्रि को जन्म दिया जो सदियो से अन्याय अत्याचार से मुक्ति

दिलाने वाले प्रसांगो से जुड़ा हैं। दक्षिण की अराध्य **देवी मीनाक्षी** के नाम पर बालिका का नाम मीनाक्षी रखा गया मगर यह नाम तो केवल विशेष अवसरों पर लिखने व बोलने के लिए रह गया मीनाक्षी मिनी कहलाने लगी और समय के साथ साथ मिनी प्रतिकूल परिस्थिति से जूझते - पिता के आश्रय से विमुख मिनी सतनामी महंत बुधारी की छत्र- छाया में पलने लगी। सोना तो कसौटी पर खरा उतरने से पहले कई दौर से गुजरता ही है । यह काल भी मिनी के लिए कसौटी पर कसने का काल था।

आसाम के नवगांव जिले के अंतर्गत आने वाले छोटे से ग्राम जमुनामुख के प्रायमरी स्कूल में मिनीमाता नें प्रथमिक शिक्षा पाई। उस समय किन्ही को स्वप्न में भी यह सोच नही रहा होगा कि यह छोटी सी गरीब लड़की एक दिन लाखों सतनामियों को गुरूमाता होगी और अपनी मातृभूमि की सेवा में महती भूमिका निभाएगी।

गुरूघासीदास द्वारा स्थापित सतनाम पंथ छत्तीसगढ़ से बाहर भी प्रचार प्रसार पाया। इस पंथ के प्रचार प्रसार में इसके गुरूओं की महत्वपूर्ण भूमिका रही हैं जो हजारो कि.मी. की यात्रा कर सतनाम पंथ का प्रचार प्रसार करते हैं। गुरू घासीदास की परंपरा में चौथी पीढ़ी के **गुरू अगम दास** हुए। इन्होने भी सतनाम पंथ के प्रचार प्रसार के लिए हजारो कि. मी की यात्रा की। लाखो लोगो तक पंथ का प्रचार- प्रसार किया। ऐसे ही दौर में उन्होने आसाम प्रांत का दौरा किया। उस दौरे में महंत बुधारी के यहां ठहरे। मीनाक्षी की सुन्दरता व सेवा भाव से आगम दास प्रभावित हुए उसे अपने साथ छत्तीसगढ़ ले आए। लगभग 32 वर्षो के पश्चात अपनी मूल भूमि में वापस लौटे मिनी और उसेक साथी हर्षित थे। **गुरू आगम दास के साथ मीनाक्षी की शादी** संपन्न हुई कुमारी मिनाक्षी अब मिनी माता के नाम से जाने जानी लगी। सतनामी समाज के गुरू के साथ मिनीमाता अधिक से अधिक लोगो से संपर्क में आई और अपने चुम्बकीय व्यक्तित्व से लोगो का ध्यान अपनी ओर खींचने में समर्थ रही। दुख देखा था, दुख सहा था अतः दुखियों की सहायता के लिए आठोपहर सजग रहती थी। छत्तीसगढ़ में सतनाम पंथ के अनुयायियो ने अपने गुरू के साथ राष्ट्रीय आंदोलन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। समाज सुधार में भी गुरूओं की महत्वपूर्ण भूमिका रहती आई थी। मिनीमाता को ऐसी पृष्ठ भूमि मिली और मिनीमाता समाज सुधारक के रूप में आगे बढ़ती गई। व्यक्तिगत जीवन में लगातार दुख झेलने वाली मिनी के लिए 1932 से 52 के तीस वर्ष शांति समृद्धि व सुख के थे। 1953 में वज्रघात हुआ और पति अगमदास की असमायिक मृत्यु हो गई। अगमदास जी प्रथम भारतीय लोक सभा के सम्मानित सदस्य चुने गए थे। 1953 में उपचुनाव के लिए मिनीमाता को प्रत्याशी बनाया गया और प्रचंड बहुमत से लोकसभा की सदस्या बनी। योग्यता को अवसर मिला और प्रसिद्धि के सोपान मिलते गए। स्वाधीन भारत की एक प्रमुख समस्या अस्पृश्यता थी। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने स्वाधीनता की लड़ाई के दौर दौरा में अस्पृश्यता

निवारण को अपने कार्यक्रमों का अंग बनाया था। आजादी के बाद प्राथमिकता के आधार पर जो कार्य किए गए उनमें अस्पृस्यता निवारण कानून का पारित किया जाना भी एक था। भारतीय संसद में इसके लिए बिल प्रस्तुत कने का गुरूतर भार मिनीमाता को सौंपा गया। छ त्तीसगढ़ की पहली महिला सांसद ने लोक सभा में यह बिल रखा और बिल के साथ उसका नाम जुड़ गया । गांधी के स्वपनों को साकार करने का कार्य दलितो के नेता मिनीमाता ने किया।

मिनीमाता को अपने परिवार का पिछला हादसा भूला नहीं था कि अकाल नें उन्हे मारा था, छत्तीसगढ़ से पलायन बंद कराने के लिए आवश्यक था कि यहां के मेहनतकश लोगों को सिंचाई के लिए पानी सुनिश्चित रूप से मिले। सांसद के रूप में मिनीमाता ने हसदो परियोजना को स्वीकृत कराने में महत्वपूर्ण भाग लिया। 1967 से 76 के मध्य यह योजना पूरी हुई तब तक मिनीमाता को निधन हो चुका था उन्हे सच्ची श्रद्धांजलि देतेहुए म. प्र. सरकार ने बांध का नाम **मिनीमाता बांध** रखा है। मिनीमाता को श्रद्धांजलि स्वरूप रायपुर महानगर के बस स्टैंड का नाम भी **मिनीमाता बस स्टैंड** रखा गया हैं।

गरीबी मे पले बढ़े लोग जब संपन्न हो जाते है प्यादे से फरजी बन जाते है तब टेढ़े टेढ़े चलने लगते हैं मगर मिनीमाता के साथ ऐसा नही हुआ। वैभव भंडार की स्वामिनी होने के बावजूद दीन दुखियों के प्रति मिनीमाता के व्यवहार में परिवर्तन नहीं आया। जो भी अपनी समस्या लेकर गया समाधान पाकर वापस लौटा। यही वजह है कि उनके निधन पर पूरा समाज रोया था। प्रथम महिला सांसद के रूप में मिनीमाता नें अंचल के दलितो दमितो की स्थिति सुधारने का प्रयास किया। व्यक्तिगत जीवन में दुख ही दुख पाने वाली महिला नें समाज को सुखी देखने के लिए कमर कसी। 11 अगस्त 1972 की रात्रि को दिल्ली के निकट भीषण वायुमान दुर्घटना हुई इसमे छत्तीसगढ़ की प्रथम सांसद मिनीमाता का भी दुखद निधन हो गया। सतनामी समाज के लाखो नर नारियों इस हृदय विदारक घटना को सुना सहा। मिनी माता के साथ एक सहृदय महिला समाज सुधारक महिला का निधन हो गया। मिनीमाता के पश्चात दूसरी कोई ऐसी महिला नही हुई जिस पर समाज गर्व करता। अतुलनीय महिला ने समाज सेवा का जो दृष्टांत प्रस्तुत किया वह हैरत अंगेज हैं। संघर्षमय जीवन जीने वाली महिला ने रचनात्मक स्वरूप प्रस्तुत कर **संघर्ष व जन चेतना के इतिहास** में अपना नाम देदिप्यमान किया हैं।

--00-

अध्याय -14

# त्याग मूर्ति - ठाकुर प्यारे लाल सिंह

प्रतिमा की स्थापना एवं अनावरण में मेरी आस्था नहीं है मगर आज पहली बार में ठाकुर प्यारे लाल की कास्य प्रतिमा का अनावरण कर रहा हूँ - ये भाव थे आचार्य विनोबा भावे के भाषण के जो उन्होनें 21 दिसम्बर 1963 ई, को बुनकर सहकारी संघ कार्यालय रायपुर में ठाकुर प्यारे लाल सिंह के कांस्य प्रतिमा का अनावरण करते हुए - मुख्य अतिथि के रूप में व्यक्त किए थे। उल्लेखनीय है कि संपूर्ण भारत मे आचार्य विनोबा भावे द्वारा अनावृत्त एक मात्र प्रतिमा हैं। आचार्य विनोबा भावे ने छत्तीसगढ़ के गौरव पुरूष, त्यागमूर्ति, गरीबों के मसीहा, छत्तीसगढ़ के गांधी, मजदूरों का प्रथम नेता आदि विशेषणों से युक्त ठाकुर प्यारे लाल सिंह को अपनी विनम्र श्रद्धांजलि दी थी।

ठाकुर प्यारे लाल सिंह के जीवन चक्र पर विहंगम दृष्टि डालनें पर सहसा विश्वास नहीं होता कि छत्तीसगढ़ की माटी में ऐसा नर रत्न पैदा हुआ था जिसने अपना संपूर्ण जीवन जन कल्याण के लिए अर्पित कर दिया। ठाकुर साहब के व्यक्तित्व एवं कृतित्व की सांगोपांग विवेचना संभव नहीं हैं इसी कारण आज तक उनका पूर्ण मूल्यांकन नहीं हो पाया हैं। जब भी जहां भी अत्याचार, शोषण, दमन, प्रताड़ना के दृश्य दिखते थे। ठाकुर साहब संघर्ष के लिए कमर कस लेते थे। छोटे से रियासत राजनांदगांव से जीवन यात्रा प्रारंभ करने वाले ठाकुर साहब के पड़ाव दुर्ग, रायपुर, नागपुर, जबलपुर, इलाहाबाद के अलावा छत्तीसगढ़ अंचल के असंख्य गांव थे।

21 दिसम्बर 1881 ई.को सी.पी. एंड बरार के दुर्ग जिले के अंतर्गत आने वाले राजनांदगांव रियासत के **दैहान** नामक ग्राम में प्यारे लाल सिंह का जन्म बघेल राजपूत दीनदयाल सिंह के घर माता नर्मदा देवी के गर्भ में हुआ था। पिता विभिन्न रियासतों में इंस्पेक्टर ऑफ स्कूल्स के पद पर कार्यरत थे। उनका अधिकांश समय दौरे में व्यतीत होता था। शिक्षा, शिक्षा का सही अर्थ समझने में ठाकुर साहब समर्थ थे। पिता की असामयिक मृत्यु के कारण प्यारे लाल सिंह उच्च शिक्षा प्राप्त करने से वंचित होते होते बचे। नागपुर से बी. ए. और इलाहाबाद विश्वविद्यालय से एल. एल. बी. की उपाधि प्राप्त करने में सफल रहें। राजनांदगांव के पहले **विधि स्नातक** होने का गौरव उन्हें प्राप्त हैं। छत्तीसगढ़ से भी बीसवी शताब्दी के प्रारंभिक चतुर्थांश में विधि स्नातक होने वाले मुट्‌ठी भर लोगों में से वे एक थे।

पूत क पांव पालने में दिख जाते हैं , प्यारे लाल सिंह के साथ यह कहावत चरितार्थ होती हैं। कानून के विद्यार्थी होने के कारण संघर्ष के लिए मुद्दा चुनने में उन्हें परेशानी नहीं होती थी। राजनांदगांव रियासत के दीवान नें मिडिल स्कूल की मासिक फीस तीन रूपए से बढ़ाकर आठ रूपए कर दी । विद्यार्थियों के लिए यूनीफार्म निर्धारित किया गया। काला कोट, सफेद हाफ पेंट, काली फेल्टहेट पहनना अनविार्य किया गया । प्यारे लाल सिंह ने अपनी तीक्ष्ण दृष्टि से यह देख लिया कि गरीबों को शिक्षा से वंचित करने का षडयंत्र हैं इसके विरोध में छात्र सड़क पर आ गए। ठाकुर साहब के रूप में उन्हें छात्र नेता भी मिल गया। जूलुस निकाला गया नारे लगाए गए , सभा का आयोजन किया गया। विवश होकर दीवान को बढ़ी हुई फीस घटानी पड़ी , यूनीफार्म की बाध्यता समाप्त करनी पड़ी। कानून के छात्र ने छात्रों को, निर्धन छात्रों को , शिक्षा सुलभ करवाई इस सफलता ने ठाकुर साहब को **छात्रों का बेताज बादशाह** बना दिया। राजनांदगांव के छात्रों ने की नहीं मजदूरों और नागरिकों ने भी 1907 ई. के इस आंदोलन से यह ज्ञात कर लिया कि अनाचार - अत्याचार से, शोषण से मुक्ति दिलाने वाला युवक नगर में उपस्थित हैं।

इलाहाबाद से एल. एल.बी. की उपाधि प्राप्त कर प्यारे लाल राजनांदगांव में वकालत करना चाहते थे मगर राजनांदगांव के दीवान ने इसके लिए अनुमति नहीं दी। दीवान कहते थे - **"प्यारे लाल को राजनांदगांव में रहने देने का अर्थ है दहकते हुए शोले को हथेली पर रखना"** दीवान का भय यथार्थ था। प्यारे लाल ने दुर्ग मे वकालत प्रारंभ की। धन कमाना उद्देश्य नहीं , कुशाग्र बुद्धि के थे , मेहनती थे अतः उनकी वकालत चलने लगी। राजनांदगांव आना जाना जारी था। ऐसे ही एक प्रवास में प्यारे लाल की भेंट राजनांदगांव स्थित **बंगाल नागपुर काटन मिल** (बी. एन.सी . मिल ) के कुछ मजदूरो से हुई। मजदूरो ने मिल मालिक द्वारा किए जा रहे शोषण व अत्याचार की जानकारी प्यारेलाल को दी। बारह घंटे कार्य करने के बाद भी सही पर्याप्त मजदूरी न मिलने की जानकारी मिलते ही प्यारेलाल की परदुखकातरता सामने आई। उन्होनें अपनी कार्य योजना बनाई। गुप्त रीति से मजदूरों को संगठित किया गया। महिला मजदूरो को पृथक से संगठित किया गया। संगठन की मजबूती के पश्चात अप्रैल 1920 ई. को बी.एन. सी. मिल के मजदूरो ने आंदोलन कर दिया। मिल प्रशासन हतप्रभ रह गया, उनके पाले गुन्डों का भय भी मजदूरो को भयभीत न कर सकता। प्यारे लाल ने गुंडो का भी हृदय परिवर्तन कर दिया था। **देश के इतिहास में मजदूरों का यह प्रथम आंदोलन था**। सैतीस दिनों तक हड़ताल चली , अड़तीसवे दिन मिल प्रशासन ने घुटने टेक दिए। मजदूरों की मांगे स्वीकृत हुई। कार्य के घंटे कम किए गए , मजदूरी की दर बढ़ाई गई। **पहले छात्र आंदोलन की भांति पहला मजदूर आंदोलन भी सफल रहा**। मजदूरों की जिनकी संख्या लगभग छः हजार

थी, एक लाख रूपये मजदूरी के रूप में प्रतिवर्ष अधिक मिलने लगे। मजदूरो की दशा में सुधार हुआ उन्हें दिशा मिली। अत्याचार , अनाचार शोषण न सहने की मनोदशा बनी। राजनांदगांव के साथ- साथ समाचार पत्रों के माध्यम से संपूर्ण भारत ने प्यारे लाल सिंह को मजदूर नेता के रूप में प्रतिष्ठा दी। **भारत के भूतपुर्व राष्ट्रपति व्ही. व्ही. गिरी** उन दिनों मजदूर नेता के रूप में प्रतिष्ठित थे। वे राजनांदगांव पहुंचे और प्यारेलाल सिह को हड़ताल संचालन में सहायता पहुंचाए। छत्तीसगढ़ के प्रमुख शिक्षा शास्त्री व साहित्याकार **डॉ. बलदेव प्रसाद मिश्र** ने लिखा है - अंचल में पहली बार इतनी संख्या में मजदूरों को संगठित करने , मजदूरो में शासन के विरूद्ध आंदोलन का शंखनांद करने के कारण ही प्यारे लाल सिंह को **अंचल का पहला मजदूर नेता** कहा गया है। **मजदूरों के मसीहा** के रूप में ठाकुर साहब चर्चित वर्णित हुए। 1918 ई. से 1940 ई. तक ठाकुर साहब बी. एन. सी. मिल के मजदूरों के एक छत्र नेता रहे। उनकी निस्वार्थ सेवा ही इतने लंबे काल तक एक छत्र नेता बने रहने का राज था।

राजनीतिक क्षेत्र में ठाकुर साहब की अच्छी पकड़ थी । भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस से जुड़े हुए थे। **पं. माधव राव सप्रे** उनके राजनीतिक गुरू थे । रायपुर व राजधानी नागपुर के काँग्रेसी नेता ठाकुर साहब की प्रतिभा व लोकप्रियता से प्रभावित थे। 1920 में असहयोग आंदोलन के दौरान रायपुर जिले के धमतरी तहसील स्थित **कंडेल ग्राम** में नहर सत्याग्रह प्रारंभ हुआ। ठाकुर साहब सत्याग्रिहितों के साथ थे। किसानों से नहर का लगान वसूलने का नादिरशाही हुक्म हुआ। अनुबंध पत्र बलपूर्वक भरवाया जाने लगा। इतना अधिक जल-कर था कि सामान्य कृषक उसे पटाने में असमर्थ था । ठाकुर साहब ने सत्याग्रहियों को सफलता दिलाई। सविनय अवज्ञा आंदोलन 1930 में प्रारंभ किया गया। रायपुर जिले के महासमुंद तहसील के अंतर्गत आने तक **ग्राम -तमोरा** के आदिवासियों ने **वन कानूनों** का विरोध करते हुए आंदोलन किया 9 सितम्बर 1930 की सभा में पांच हजार आदिवासी नर नारी उपस्थित थे। आदिवासी क्षेत्र में शासन का भय दूर कराने में ठाकुर साहब की सफलता उल्लेखनीय है। **गांधी जी के अहिंसक सत्याग्रह आंदोलन को ठाकुर साहब ने मजदूरों , किसानों आदिवासियों तक पहुंचाया**। पल पल, पग-पग राष्ट्रचितन में लगे रहने वाले ठाकुर साहब ने छुईखदान, आरंग, गरियाबंद, खरियार साहित अनेक गांवो में किसानों का नेतृत्व किया। हमारा जन्म, विधाता ने आराम करने या गुलामी की नरक भोगते रहने के लिए नहीं दिया हैं। उसका हिमालय से भी ऊंचा उद्देश्य है और वह है देश को स्वतंत्र बनाना, आत्म निर्भर बनाना, आत्म सम्मान पूर्ण ढंग से जीवन जीना, हमारे जीवन का हर क्षण इन्ही उद्देश्यों की प्राप्ति करने में व्यतीत हो। हमें ऐसे ही उद्यम करने है। ठाकुर साहब छात्रों , मजदूरों व आम नागकिो से राष्ट्रीय आंदोलन मे सम्मिलित होने की अपील करते थे। सच्चे गांधी भक्त होने के कारण ठाकुर सांहब ने सदैव अहिंसक आंदोलन

की वकालत की । राजनांदगांव में मजदूर की गोली चालान में मृत्यु होने के बावजूद मजदूरों की भीड़ को शांत व अहिंसक रखने में वे सफल रहे। छत्तीसगढ़ के गांव- गांव मे घूम घूमकर उन्होनें असहयोग आंदोलन, सविनय अवज्ञा आंदोलन और भारत छोड़ो आंदोलन को चलाया। 1921, 1930 और 1932 में वे गिरफ्तार किए गए। उनकी संपत्ति राजसात की गई मगर ठाकुर साहब विचलित नहीं हुए। 1942 में भूमिगत रहकर उन्होनें आंदोलन को प्रचारित प्रसारित किया। छत्तीसगढ़ अंचल में ठाकुर साहब की लोकप्रियता से भली भांति परिचित बड़े कांग्रेसी नेताओं नें 1936 के चुनाव में रायपुर धमतरी दुर्ग के सम्मिलित क्षेत्र से विधानसभा हेतु प्यारे लाल सिंह को प्रत्याशी बनाया, शानदार जीत हासिल कर प्यारेलाल सिंह विधानसभा में पहुंचे 1937 में वे मंत्री भी बनाए गए।

छत्तीसगढ़ की रियासतों की समस्याओं से ठाकुर साहब भली भांति परिचित थे। विलीनीकरण के दौर दौरा में उन्होनें अंचल के राजाओं पर भारत संघ में सम्मिलित होने के लिए जनमत का दबाव डाला। स्टेट कांग्रेस पार्टी के रूप में अनेक रियासतो में कांग्रेस की शाखाएं स्थापित की। **छत्तीसगढ़ विलीनी कृत रियासत प्रतिनिधि सभा के ठाकुर साहब अध्यक्ष थे।**

ठाकुर साहब अनेक संस्थाओं के जन्मदाता थे। 1937 में छत्तीसगढ़ एजुकेशन सोसायटी की स्थापना रायपुर में की गई । ठाकुर साहब इस सोसायटी के अध्यक्ष थे। श्री जे. योगानंदम इस समिति के सचिव थे। इसी समिति के झंडे तले 1938 में **छत्तीसगढ़ कॉलेज** की स्थापना हुई। अंचल के छात्र अब उच्च शिक्षा के लिए जबलपुर, नागपुर जाने से बचे, अनावश्यक खर्चो से मुक्त हुए। छत्तीसगढ़ कालेज आज भी अंचल का सर्वश्रेष्ठ कालेज है जो ढाई हजार छात्र / छात्राओं को प्रतिवर्ष उच्च शिक्षा प्रदान कर रहा है। अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ सकता ठाकुर साहब इस कहावत पर विश्वास करते थे। इसी लिए व्यक्ति के स्थान पर उन्होने समिति के माध्यम से विभिन्न आंदोलनों को चलाया। विभिन्न उद्देश्यों की पूर्ति के लिए विभिन्न संगठन बनाए। मजदूर आंदोलन के लिए मजदूरो का संघ बनाया। शिक्षा के प्रचार प्रसार के लिए पृथक समिति बनाया, 1945 में बुनकरो की समस्याओं के समाधान के लिए **छत्तीसगढ़ बुनकर सहकारी संघ** की नींव डाली। 1951 तक इसकी सदस्य संख्या 6,000 तक पहुंच गई। कन्ज्यूमर्स सोसायटी, बुनकर सहकारी संघ,पीतल धातु निर्माता सहकारी संघ, विश्वकर्मा औद्योगिक सहकारी संघ, किसान राइस मिल की स्थापना ठाकुर साहब ने की । सहकारी आंदोलन को गति -मति दी तेलघानी सहकारी संघ, ढीमर सहकारी संघ, स्वर्णकार सहकारी संघ का गठन उन्होनें किया ।आश्चर्य होता है कि एक व्यक्ति इतने सारे संस्थाओं -समितियों को स्थापित कैसे

कर सका ? संचालित कैसे कर सका ?

स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात कांग्रेस के स्वरूप में जो परिवर्तन आया उससे क्षुब्ध ठाकुर साहब ने **कांग्रेस से त्यागपत्र** दे दिया। 1952 के चुनाव में महाकौशल प्रजा पार्टी के टिकट पर विधानसभा का चुनाव जीता। मगन लाल बागड़ी को महासमुंद क्षेत्र से लोकसभा का चुनाव जीताया। कांकेर विधानसभा के उपचुनाव में वहां के राजा के विरूद्ध एक साधारण कार्यकर्ता को विजयी बनाया। विधानसभा में **विरोधी दल के नेता** के रूप में उन्होने उल्लेखनीय कार्य किया।

1952 मे ही आचार्य विनाबाभावे के भूदान आंदोलन से प्रभावित हो स्थान - स्थान की पदयात्रा की। भूदान आंदोलन को छत्तीसगढ़ के गांव -गांव तक फैलाया। भूदान में तो मैने अपना जीवन ही दान कर दिया है - 1952 ई. में स्वयं ठाकुर साहब ने यह बात भूदान आंदोलन से जुड़े कार्यकर्ताओं से कही थी। **20 अक्टूबर 1954 ई.** को भूदान आंदोलन का प्रचार प्रसार करते वे जबलपुर पहुंचे और वही उनका असामयिक निधन हो गया। भूदान आंदोलन के प्रथम शहीद के रूप में ठाकुर साहब का नाम भूदान आंदोलन के इतिहास में स्वर्ण अक्षरों में लिखा जाने लायक हैं।

रायपुर नगर से ठाकुर साहब का संबंध निकट का था। मिडिल स्कूल की पढ़ाई पूरी करने के पश्चात हाईस्कूल की शिक्षा उन्होनें यही से प्राप्त की थी। रायपुर उनका कार्यक्षेत्र था। 1936, 1940 और 1944 में तीन बार ठाकुर साहब **म्युनिसिपल कमेटी के अध्यक्ष** बने। रायपुर ने तीन बार उन्हे अध्यक्ष चुनकर न भूतो न भविश्य की स्थिति ला दी है। उनकी लोकप्रियता का पारा इससे आंका जा सकता हैं।

राजनीति से लाभ उठाने वाले वर्ग के विपरीत ठाकुर साहब थे। राजनीति से उन्होनें कमाया नहीं वरन अपना सब कुछ लुटाया। समय, श्रम, धन के साथ साथ जीवन भी देश के लिए अर्पित कर दिया। ठाकुर साहब के नाम के साथ कौन सा विशेषण प्रयुक्त किया जाय यह अनिर्णयात्मक स्थिति बनी हुई थी। सन्-1963 ई. में **महंत लक्ष्मीनारायण दास ने ठाकुर साहब के लिए त्यागमुर्ति विशेषण का प्रयोग किया** और तब से यही विशेषण प्रयुक्त होत आ रहा हैं। छत्तीसगढ़ की विभूतियों में त्यागमूर्ति ठाकुर प्यारे लाल सिंह अद्वितीय थे इसमें दो राय नहीं।

--00---

## अध्याय -15

# ऐश्वर्यशाली नरेश जवाहिर सिंह

छत्तीसगढ़ के चौदह रियासतो में से एक रियासत सारंगढ़ था। वर्तमान में रायगढ़ का जिले के अंतर्गत यह एक तहसील मुख्यालय है। सारंगढ़ का राज - परिवार राजगोड़ जनजाति के हैं। राजा **नरीन्द्र साय** से प्रारंभ होकर इस राजवंश में राजा **नरेश चन्द्र सिंह** तक 56 राजा हो चुके है। राजा नरेश चन्द्र सिंह मध्यप्रदेश शासन के मंत्री के रूप में अनेक वर्षो तक रहे। मध्यप्रदेश के प्रथम आदिवासी मुख्यमंत्री होने का गौरव भी इन्हें ही प्राप्त हुआ था। राजा जवाहिर सिंह इन्हीं के पिता श्री थे। सारंगढ़ के राजाओं की लंबी सूची के पचपनवे क्रम में आने वाले जवाहिर सिंह राजा रघुवीर सिंह और पुहुप कुंवर के पुत्र थे। राजा बनने से पूर्व उनका नाम **नीलकंठ** था और प्रथा के अनुसार राजगद्दी पर बैठने के बाद वे नाम परिवर्तन कर जवाहिर सिंह हुये। वे जिन परिस्थितियां में राजा हुये वह वर्णनीय है। सारंगढ़ राज परिवार में संग्राम सिंह के पश्चात थोड़े ही अंतराल में भवानी प्रताप सिंह और रघुवीर सिंह राजा हुए और अकाल काल के ग्रास हुये। इससे ऐसा निष्कर्ष निकाला गया कि जो **राजा बनेगा उसकी खैर नहीं** इसी सोच से राज परिवार की महिलाओं ने दो साल के बालक नीलकंठ को राजा नहीं बनावेगें - यह निष्कर्ष निर्णय ले लिया था। राज परिवार की महिलाओं को समझाने में पर्याप्त समय लगा। बिना नए राजा के गद्दी पर बैठे मृतक राजा का अंतिम संस्कार नहीं हो सकता था। अतः शीघ्र निर्णय अपेक्षित था। **सखाराम बेहार** महल की देखभाल करते थे। रानी उन्हें मानती थी उन्होनें कहा नीलकंठ को लाइये राजा नहीं बनायेंगे। नीलकंठ को लाया गया सखाराम बेहार ने पहले से तैयार पगड़ी जो घुटने में लपेट रखी थी। नीलकंठ के सर पर रख दी और घोषित कर दिया कि नया राजा बना लिया गया। मृतक संस्कार किया जाये।

लाड प्यार में पले जवाहिर सिंह जब तक नाबालिग थे तब तक रियासत का कार्यभार **ठाकुर मनबोध सिंह** करते रहे। रियासत की आर्थिक स्थिति ठीक न होने के कारण राजा रघुवर सिंह के अंतिम संस्कार के लिये मात्र आठ सौ रूपयों की स्वीकृति अंग्रेज अधिकारी ने दी। जवाहिर सिंह अपने हमजोलियों के साथ समय व्यतीत करते थे। एक बंदर और नवला वे पाले हुये थे। तैरना उन्हें बहुत पसंद था। बैलों से जुते टांगा गाड़ी पर वे सवारी करते थे। भेड़ लड़ाना उनकी हावी थी इसलिये हट्टे कट्टे भेड़ पाला जाता था।

राजा को उच्च शिक्षा के लिये राजकुमार कालेज रायपुर भेजने का प्रस्ताव सामने आया अंग्रेज अधिकारी पहले तो राजपरिवार की महिलाओं को इस हेतु समझाइश देते हैं मगर राज परिवार की महिलाओं ने कहा भले ही राजा दूसरे को बना दे। राज पर अंग्रेज अधिकार कर लेवें जवाहिर सिंह को आंखो के आगे से अलग नहीं कर सकेंगे। पोलिटिकल

एजेन्ट के कड़े रवैया के कारण राजमाता व अन्य महिलाओं को झुकना पड़ा और जवाहिर सिंह को उच्च शिक्षा के लिये राजकुमार कालेज रायपुर में भरती किया गया। अंग्रेजी का ज्ञान राजा के लिये बहुत लाभप्रद सिद्ध हुआ। उच्च पदस्थ अंग्रेजो को वे फर्राटेदार अंग्रेजी बोल कर प्रभावित करने में सफल रहे।

जवाहिर सिंह का पहला विवाह 4 मार्च 1907 ई. को खड़गांव के दीवान की पुत्री कैलाश कुमारी के साथ संपन्न हुआ। 1909 ई. में बालिग होने पर उन्हें **राज्याधिकार** प्राप्त हुआ। एक राजगोड़ की कन्या नेम कुमारी से उन्होंने गुप्त विवाह किया। 21 नवम्बर 1908 ई. को रिपुदान का जन्म हुआ जो आगे चलकर नरेश चन्द्र सिंह के नाम से राष्ट्रीय प्रसिद्धि प्राप्त किये। जवाहिर सिंह ने अपनी इच्छा से नेम कुमारी से विवाह किया था अपनी मरजी के वे मालिक थे यह इससे झलकता है। 1911 ई. में इंग्लैड के सम्राट पंचम जार्ज भारत आये उनके कोरोनेशन दरबार में भारत भर के देशी राजाओं को आमंत्रित किया गया। सारंगढ़ नरेश जवाहिर सिंह भी दिल्ली गये और सम्राट से भेंट किये। अन्य राजा महाराजा राजशी ठाठ- बाठ में थे मगर जवाहिर सिंह ने अंग्रेजी पोशाक में सम्राट से भेंटकर उन्हें प्रभावित किया।

खेलकूद में राजा साहब की बहुत रूचि थी छत्तीसगढ़ फ्यूडेटरी की क्रिकेट टीम के वे आधार स्तंभ थे। 1914-17 के लिए वे सी.पी. एंड बरार की व्यवस्थापिका सभा के सदस्य मनोनित हुए। 1918 में जवाहिर सिंह को राजा बहादुर की उपाधि से सम्मानित किया गया। सन् 1929 से 32 तक वे राजकुमार कालेज रायपुर की गवर्निंग बाडी के अध्यक्ष रहे जिस कालेज के छात्र थे उसी कालेज की व्यवस्थापन समिति के अध्यक्ष हुए।

सारंगढ़ नरेश के रूप में उन्होंने सारंगढ़ की व्यवस्था में आमूल चूल परिवर्तन करने का निश्चय किया। सारंगढ़ के लोगों के मकान घास फूस खदर के बने रहते थे जो प्रभावहीन थे, आये दिन आग लग जाती थी जिससे जान माल की क्षति होती थी। खपरैल के घर बनाने के लिए राजा साहब ने प्रेरित किया, रियासत की ओर से निःशुल्क बांस बल्ली की व्यवस्था की गई। लोग प्रेरित हुए और पक्के खपरैल के मकान बनने लगे। सारंगढ़ के मकानों में परिवर्तन स्पष्ट दिखने लगा।

जवाहिर सिंह को ही सारंगढ़ में **सर्वप्रथम सायकल** लाने का श्रेय जाता है। दो पहियों की गाड़ी को चलते देख लोग आश्चर्यचकित हो जाते थे। सारंगढ़ के फुटबाल हाकी आदि खेलों का प्रारंभ उन्होंने करवाया धोती धारी लोगों को हाफ पेंट पहनने के लिए तैयार करना कठिन कार्य था मगर ठान लेने पर कोई भी कार्य असंभव नहीं होता। यह राजा साहब ने प्रमाणित कर दिया। सारंगढ़ की महिलाएं ब्लाउस नहीं पहनती थी, गरीबी के कारण नहीं बल्कि चलन में न रहने के कारण राजा साहब ने **भोजली विसर्जन** के लिए गणमान्य नागरिकों की महिलाओं को आमंत्रित किया। राजा की रानियां ब्लाउस पहनी थी उन्होंने इन महिलाओं को भी ब्लाउस पहनकर आने के लिए प्रेरित किया फिर तो धीरे धीरे ब्लाउस का चलन प्रारंभ हो गया।

उच्च शिक्षा के लिए **एडवर्ड हाईस्कूल** खोला गया छात्रों को प्रेरित किया गया। छात्रवृत्ति की व्यवस्था की गई। मैट्रिक की परीक्षा में कई वर्षों तक कोई छात्र सफल नहीं हुआ तब हाईस्कूल बंद कर दिया गया। छात्रवृत्ति देकर बाहर पढ़ने के लिए भेजने का क्रम जारी किया गया। उच्च शिक्षा के लिए पचास पचास कोस दूर तक के छात्र सारंगढ़ आते और रिश्तेदारों के यहां रहकर शिक्षा प्राप्त करते। **शिक्षा केन्द्र के रूप में सारंगढ़ प्रसिद्ध** था।

मनोरंजन के साधनों का विकास राजा साहब ने किया। दशहरा, रथयात्रा धूमधाम से मनाना जारी किया ये त्यौहार पहले भी मनाये जाते थे मगर अधिक धमाकेदार आयोजन होने लगे। गणेशोत्सव भी धूमधाम से मनाया जाने लगा। राजा जवाहिर सिंह को शिकार का बड़ा शौक था। शिकार के लिए अंग्रेजअधिकारियों को आमंत्रित करते थे। क्रिप्स मिशन के प्रमुख **सर स्ट्रेफोर्ड क्रिप्स** अपने व्यस्त कार्यक्रम के बावजूद सारंगढ़ नरेश के अनुरोध पर शिकार खेलने सारंगढ़ आये थे यह बड़े बूढ़ों को अभी भी ज्ञात है। विस्मृत नहीं हुआ है।

राजा साहब अपने पद व प्रतिष्ठा के अनुरूप एक भवन महल बनाने के लिए उत्सुक थे। इस संघर्ष में उन्होंने इंजीनियरों की सेवा ली **गिरीविलास पैलेस** का निर्माण उन्होंने कराया। आकार ऊंचाई में काफी बड़ा होने के बावजूद राजा जवाहिर सिंह को महल से संतोष नहीं हुआ लगातार कुछ न कुछ परिवर्तन संवर्धन वे करते हैं। मृत्यु पर्यन्त गिरि विलास पैलेस को वे सजाते संवारते रहे। आधुनिकतम सुविधाओं से युक्त महल था। **अंडरवाल बिजली फिटिंग, रनिंग वाटर की सुविधा** लंबे चौड़े हाल, सुन्दर सीढ़ियां, असंख्य कमरों वाला गिरी विलास पैलेस आज भी छत्तीसगढ़ राज्य का **सर्वश्रेष्ठ पैलेस** है। अपने निर्माण काल से यह लोगों के कोतुहल व आकर्षण का केन्द्र रहा है। अंग्रेजी पढ़े होने के बावजूद जवाहिर सिंह ने महल का नाम हिन्दी में रखा, सारंगढ़ आने का एक आकर्षण महल का देखना होता था न केवल आस- पास वरन दूर दराज से आये लोग भी महल अवश्य देखते थे। कीमती सामानों से भरा महल गाइड के निर्देशन में दिखलाया जाता। गिरि विलास पैलेस से पंडित **शुकलाल प्रसाद पाण्डेय** इतने प्रभावित हुए थे कि छत्तीसगढ़ गौरव नामक **द्विवेदी युगीन खण्ड काव्य** में उन्होने लिखा -

स्वर्ग खोजते आप अन्यत्र स्वर्ग नहीं है।
**सारंगढ़ नृप सौध जहां है, स्वर्ग वहीं है ॥**

शाहजहां ने दीवने आम में जो उर्दू में लिखवाया था शुकलाल प्रसाद पांडे ने वही भाव हिन्दी में व्यक्त कर दिया है। वैभवशाली ऐश्वर्य मुक्त, आकर्षण, मनभावन, पावन महल के रूप में इसका चित्रण दर्शाता है। कि जवाहिर सिंह जैसा चाहते थे वैसा ही हुआ। महल का निर्माण ब्रिटिश अधिकारियों का ध्यान आकृष्ट करने वाला था। एक छोटी सी रियासत का स्वामी इतना बड़ा महल कैसे बना रहा है। बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में

लगभग **2 लाख 25 हजार रुपये** महल के निर्माण के व्यय हुए आज इस महल की कीमत करोड़ो रुपयों में आंकी जाती है। राजमहल में ठहरने वाले अतिथियों से **विजिटर्स बुक** में लिखवाया जाता था। ठहरने वाले अपने विचार लिखते थे इस बुक में पहली प्रविष्टि 31 दिसंबर 1924 से है इससे ज्ञात होता है कि 1924 में महल का अधिकांश भाग पूरा हो चुका था। राजमहल के अंदर न केवल राज परिवार रहता था वरन राज परिवार पर संकट आये दिनों में जिन परिवारों ने साथ दिया था ऐसे परिवार भी आदर के साथ कृतज्ञता पूर्वक बसाये गये थे। अपने निकट रक्त संबंधी ठाकुर साहब लोगों के साथ साथ बंदरगाह परिवार की आहाते के अन्दर रहते थे। पोलिटिकल एजेन्ट ने इसे सही नहीं समझा और **ठाकुर राउर** का निर्माण महल से दूर करवाया गया, **बरगाह** लोगों का भी महल के आहाते के ठीक बाहर बसाया गया। राजा जवाहिर सिंह 6 फुट ऊंचे हट्टे कट्टे पुरूष थे आवाज उनकी बलुंद थी **बांस गीत** के राजा के बारे में विवरण है -

राज जवाहिर सिंह दिया रूप बरे
राजा महाराज हो हीरा रूप बरे।
चारि चंद्ररदा हुकुम जात हे,
चोर चिंहाट के थंर थर जी करे
ऐसे प्रतापी राजा गरीब गुन्डा जमों बर विधा करे।
राउत नाचा में भी राउत हाना पारता है ...
लिपे पुते अंगना में, पांव देय, झन नाथ हो
जहां बैठे है राजा जवाहिर सिंह बाघ रूप गुर्राय हो॥

राजा जवाहिर सिंह अपनी प्रजा के दुख सुख के साथी थे। हैजा का प्रकोप जब नगर पर हुआ था तब राजा ने घर- घर जाकर दवा व डाक्टर की व्यवस्था कर लोकप्रियता प्राप्त की। राजा जवाहिर सिंह पूरी अवस्था तक जीवित नहीं रह सके। टी.वी. के शिकार हुए और **15 जनवरी 1946 को दिवंगत** हुए।

नीचे गोरसी ऊपर खाट
देखो गोड़ राजा के ठाठ।

उपरोक्त हाना गोड़ राजाओं की हास्यास्पद स्थिति को दर्शाता है। गोड़ राजा का एक ठाठ सारंगढ़ में देखा जा सकता है। गिरि विलास पैलेस यदि हानाकार देख सकने में सफल होता तो उसे शर्मिंदगी का सामना करना पड़ता। एक गोड़ राजा ने अपने लिये ऐसा ऐशवर्यपूर्ण महल बनाया जिसकी जोड़ का दूसरा महल संपूर्ण छत्तीसगढ़ में नहीं है।

राजा जवाहिर सिंह के अनेक किस्से सारंगढ़ में मशहूर है। राजा का ब्राह्मणों से टकराव एक ऐसा नाजुक मामला था जिसके चलते अधिकांश ब्राह्मण परिवार जवाहिर सिंह के विरोधी हो गये थे। छत्तीसगढ़ के चौदह देशी रियासतों के प्रमुखों में राजा जवाहिर सिंह अपना पृथक पहचान बनाने में सफल रहे थे।

# अध्याय - 16

## छत्तीसगढ़ के सत्रह शहीद इतिहास का एक पृष्ठ

छत्तीसगढ़ के इतिहास में कुछ सुनहरे पृष्ठ है जो इस अंचल के निवासियों में उत्साह का संचार करते है छत्तीसगढ़ को गौरव दिलाने वाले ये पृष्ठ छत्तीसगढ़ की विरासत है। नई पीढ़ी इन घटनाओं को पढ़कर गौरवान्वित होती है और अंचल के नायकों के प्रति आदर भाव से नत होती है। 1857-58 के तनाव भरे माहौल में छत्तीसगढ़ में भी अंग्रेजी दासता के मुक्ति पाने के महाअभियान में भागीदारी की प्रबल भावना उभरी, बहुचर्चित सोनाखान के जमींदार नारायणसिंह के अलावा **हनुमानसिंह** और उसके साथियों ने अंग्रेजों के हाथ पांव सुन्न कर दिये। अंचल के इतिहास में **जनवरी की 18, 20 व 22** की तिथियां महत्वपूर्ण है। ये तीनों तिथियां 1858 के उन तूफानी दिनों की झलक प्रस्तुत करती हैं। जब भारत से अंग्रेजी राज समाप्त होते होते रह गया था।

18 जनवरी को मैग्जीन लश्कर हनुमानसिंह ने मेजर सिडवेल पर 9 घातक प्रहार कर उसे मार डाला और सैनिक छावनी में मेजर के मारे जाने की घोषणा करते हुये सैनिकों को विद्रोह के लिये आव्हान किया। हनुमान सिंह पहले कुछ धमाकेदार कार्यवाही करना चाहता था। प्रत्यक्ष प्रमाण प्रस्तुत कर अपने साथियों के मन से अंग्रेजों का भय दूर करना चाहता था इसीलिये रायपुर स्थित सैन्य टुकड़ी के सर्वोच्च अधिकारी मेजर सिडवेल की हत्या क र उसने यह त्थ्य प्रतिपादित किया कि हौसला बुलंद हो, तो अकेला चना भी भाड़ फोड़ सकता है। सिडवेल की हत्या से भारतीय सैनिकों में उत्साह की लहर फैल गयी देखते -देख एक समूह विद्रोह की घोषणा कर हनुमान सिंह के नेतृत्व में लड़ने -मरने को प्रस्तुत हो गया शाम को साढ़े सात बजे सिडवेल की हत्या हुई और विद्रोही हरकत में आए रात्रि बारह बजे तक विद्रोही अपनी बंदूकों से गोलियां बरसाते रहे और छावनी के अंग्रेजों की हालत पतली करते रहे।

सिडवेल की हत्या हनुमान सिंह ने किसी व्यक्तिगत दुश्मनी से नही की थी सिडवेल

ना प्रतीक था विदेशी शासन का विदेशी शासन को समाप्त करने के उद्देश्य से ही हनुमान ने 18 जनवरी की मेजर सिडवेल की हत्या कर अपने साथियों को विद्रोह के लिये ललकारा 35 वर्षीय हनुमान सिंह **5 फूट 4 इंच की ऊंचाई** का था। बैसवाड़ा के इस राजपूत ने राजपूती आन-बान शान का परिचय देते हुए सर पर कफन बांध विदेशी शासन को उखाड़ फेंकने का उपक्रम किया तेज आवाज में बोलने वाले हनुमान सिंह ने नारायणसिंह को दी गयी फांसी के पचासवें दिन ही विद्रोहका नेतृत्व कर जहां एक ओर सैनिक असैनिक अधिकारी की नींद हराम कर दी। वहीं दूसरी ओर छत्तीसगढ़ के इतिहास में अपनी अमिट छाप भी छोड़ी सैनिकों को विद्रोह के लिये तैयार करना जोखिम भरा काम होता है। स्वामी भक्ति का पाठ सैनिकों को सतत् पढ़ाया जाता है। अपेक्षाकृत अच्छी वेतन व सुविधा प्राप्त यह वर्ग कठिनाई से ही विद्रोही बनाया जा सकता है। हनुमान ने शेर की मांद में ही शेर को मार कर सैनिकों के लिये एक दृष्टांत प्रस्तुत किया था।

हमुमान सिंह द्वारा सिडवेल की हत्या कर देने से शिविर में सनसनाहट फैल गयी। निर्णय लेने में विलंब से असफलता निश्चित थी। हनुमान सिंह उकसाते हुये ललकारते हुये सैनिकों को विद्रोह में सम्मिलित होने का आव्हान करता रहा। सैनिकों की संख्या में आशानुकुल वृद्धि नहीं हुई। सैनिकों के एक बड़े वर्ग ने अंग्रेजों का ही साथ दिया और विद्रोह को फैलने से रोक दिया। लगभग पांच घंटे तक शिविर पर विद्रोही सैनिकों को पकड़ रही। हनुमान सिंह के नेतृत्व में विद्रोही मोर्चे पर तैनात थे रह रहकर गोलियों की आवाजें शिविर में तनाव को बढ़ा रही थी। अपने ही भाइयों पर कैसे गोली चलायें शायद विग्रोह में शामिल हो जायें इस इंतजारी में काफी समय व्यतीत हो गया। हनुमान सिंह का साथ देने वालों में हिन्दू मुसलमान दोनों जातियों -धर्मो के लोग थे। गाजीखा अब्दुल हयात, नजर मोहम्मद जैसे मुसलमान थे तो शिवनारायण, पन्नालाल, मातादीन, ठाकुर सिंह जैसे हिन्दू भी थे। अंग्रेजों को निकाल बाहर करने के लिये सर पर कफन बांधे रण बांकुरों का यह दल परिणाम की परवाह न करते हुये अपना कर्तव्य समझकर विद्रोह में शामिल हुआ 17 लोग बाद में फांसी पर लटकाए गये। फांसी व्यक्ति की जान ले सकती है, विचार की नही - यही एक नहीं, अनेक बार विश्व इतिहास की घटनाओं ने प्रमाणित किया

है। इस महत्वपूर्ण घटनाक्रम का नायक हनुमान सिंह अंग्रेज और अंग्रेज भक्त सैनिकों की हिट लिस्ट में था। किसी भी कीमत पर उसे मार डालने का, जीवित पकड़ने का उपक्रम किया गया था। सिपाही प्रगौफ को बाद में इसीलिए पुरस्कृत किया गया कि उसने हनुमानसिंह पर गोली चलाकर उसे मार डालने का प्रयास किया था। सिपाही प्रगौफ अकेला नहीं था ऐसे ही हुसैन खान, इस्माइल खान, गणेश दुबे, नानक जसवंत भी थे जिन्होनें हनुमानसिंह पर या तो गोली चलायी या उसका साथ देने से लोगों को रोका। ये सभी लोग बाद में पुरस्कृत किये गये। 18जनवरी 1858 की रात्रि को हनुमान सिंह के नेतृत्व में भारतीय सैनिकों के एक वर्ग ने विद्रोह का जो परचम फहराया वह अल्पजीवी रहा केवल पांच घंटों तक चलने वाले इस विद्रोह ने हनुमान सिंह और उनके साथियों को छत्तीसगढ़ के गौरव पुरूषों की श्रेणी में ला खड़ा किया। अंग्रेज अधिकारी सी. वी. एल. स्मिथ ने सिडवेल की हत्या के बाद नेतृत्व संभाला और लेपिट रिवोट के साथ विद्रोहियों के घात प्रतिघातों का सामना किया।

गिरफ्तार किये गये 17 प्रमुख आरोपियों पर मुकदमा चला। जो महज एक नाटक था। विद्रोह के लिये दो दिन में साक्ष्य उपस्थित कर निर्णय भी सुना दिया गया। गाजीखान हवलदार, गुलीज शिवनारायण , पन्नालाल, मातादीन, अब्दुल हयात, बुलिहू, ठाकुर सिंह, अकबर हुसैन, लालसिंह, बदलु परमानंद, सोभाराम, दुर्गा प्रसाद, नजर मोहम्मद, शिव गोविन्द, देवीदिन सभी गोलंदाज फांसी पर लटका दिये गये। उनकी चल अचल संपत्ति जब्त कर ली गयी। वतन पर मरने वालों का बाकी निशां रह गया। हनुमान सिंह के नेतृत्व में विद्रोह और 17 व्यक्तियों को शहादत ने 22 जनवरी को अंचल के इतिहास का महत्वपूर्ण दिन बना दिया। 22 जनवरी को ही ये सत्रह व्यक्ति फांसी पर लटकाए गये थे। हनुमान सिंह और उनके इन सत्रह साथियों की उपलब्धियों का प्रचार-प्रसार युग की मांग हैं। समय का तकाजा है। एक साथ सत्रह व्यक्तियां को सरेआम सैनिकों व नागरिकों के सम्मुख फांसी पर लटकाया गया। ये सत्रह व्यक्ति भी शहीद है। इनकी गौरव गाथा भावी पीढ़ी को अन्याय अत्याचार से संघर्ष की सीख देती रहेगी।

# अध्याय -17

# बस्तर की दोरला जनजाति

बस्तर जिला कलम व कैमरे का केन्द्र बना हुआ है । यह एक आदिवासी बहुल जिला है, प्रदेश के लगभग 12/आदिवासी यहीं अपने आंसूओ व मुस्कानों का जीवन व्यतीत करते है। जिले की कुल आबादी का 71% आदिवासियों का है। बस्तर जिले के दक्षिण पश्चिम में निवास करने वाली दोरला जनजाति पर आन्ध्र प्रदेश का प्रभाव पड़ा है, बस्तर के कम ज्ञात आदिवासियों में दोरलों की गणना होती हैं। 1931 की जनगणना में पहली बार दोरलों की संख्या ज्ञात की गई थी।

गोड़ जनजाति अपने लिये कोयतुर शब्द काप्रयोग करते है। पहाड़ों में रहने वाले गोड़ **मेटा कोयतुर** और समतल मैदानों में रहने वाले **दोर कोयतुर** कहलाये। दोर कोयतुर दोर कोई हुआ और वही सरलीकरण होकर दौराया दोरला हुआ तेलगु भाषा में दोरला का अर्थ प्रमुख या स्वामी होता है। समतल मैदान के स्वामी अपने को दोरला कहने लगे। संपूर्ण दोरला जाति पांच गोत्रों में विभाजित है। अपना आदि पुरूष ये गुरिसिंगावोय को तथा आदि जननी गुरि मंगम्मा को मानते है , बतलाते है। बस्तर में इन लोगों का आगमन दक्षिण भारत के वारंगल क्षेत्र से हुआ प्रायः सभी बुजुर्ग दोरला यही बतलाते हैं। इनके नाम रखने के ढंग भी दक्षिणी है। नाम से पहले सरनेम जोड़ते है जैसे सोयम जोगा, माड़वी अर्जुन आदि इनके एक मृत्यु गीत में कलेगी राजू अर्थात कलिंग राजा का उल्लेख मिलता है इससे भी इनके मूल स्थान पर प्रकाश पड़ता हैं। पहले वारंगल भी कलिंग राजा के अधीन था। कलिंग राजा का उल्लेख यह भी स्पष्ट करता है किं दोरला जाति अशोक के काल में भी विद्यमान थी। इस प्रकार भारत के प्राचीन आदिवासियों मेंइनकी गणना की जा सकती है। वारंगल से यह जनजाति बस्तर कब आयी इसके बारे में सहीं जानकारी नही मिल पायी है। एक वर्ग इनका बस्तर आगमन चौदहवीं शताब्दी में मानती है । कोन्टा और बीजापुर तहसील के जिस भाग में ये बस गए वहां से आगे नहीं बढ़े। एक ही क्षेत्र में इनकी बसाहट यह अभिप्रमाणित करती है,कि इन्हें अपना गांव परिवार प्रिय हैं, जिसे किसी कीमत पर ये छोड़ना नहीं चाहते है। कोन्टा तहसील के सुकमा कस्बे से लगभग 42 कि. मी. दूर स्थित पेंटानाला से इनके गांव प्रारंभ होते है एर्राबोर सबसे बड़ा गांव है। बीजापुर तहसील के अन्तर्गत कुटरू तथा भोपालपटनम इलाके में भी इनके गांव हैं।

दोरला जनजाति मुख्यतः किसान है। इनके खेत स्थाई होते है। और इस कारण इनके गांव स्थाई होते है। खेत जोतने के लिए ये हल का प्रयोग करते है धान और बाजरा इनके मुख्य पैदावार है नदी के किनारे ही इनके निवास स्थान होते हैं गांव से लगा निस्तारी जंगल होता है जहां से ये अपने दैनिक जीवन में उपयोग आने वाले लकड़ी , घास, फल-

फूल कंदमूल प्राप्त करते है वनोपज भी इन के खाद्यान्न का एक पूरक भाग है पर्याप्त अनाज न उपजा पाने के कारण ही इन्हें वनोपज पर निर्भर रहना पड़ाता है। बस्तर मे अधिवास करने वाली जनजातियों में दोरला कुछ पृथक से है यही जनजाति पशुधन पर पर्याप्त ध्यान देती है। पशु को ये धन मानते है गाय, भैस ये पालते है, इनका दूध भी निकालते है दूध केवल सबेरे के समय निकालते है, इस संदर्भ मे उल्लेखनीय तथ्य यह है कि दोरला न तो स्वयं दूध पीता है और है और न पूरक आहार के रूप में अपने बच्चे को पिलाता है। गाय भैंस केवल रूपये कमाने के लिये एक व्यवसाय के रूप में पाले जाते है दूध से दही, मक्खन, घी बनाया जाता है और अधिकांश भाग व्यापारियों को बेच दिया जाता है कोन्टा और बीजापुर तहसील के इन दोरलों से बस्तर के अनेक व्यापारी निरंतर घी की खरीदी करते है। और इसे बस्तर के अन्दर और बाहर तक बेचते हैं।

धरती से सीधे जुड़े होने के कारण दोरला जनजाति के प्रायः सभी त्यौहार खेती से जुड़े हुए है। इनका सबसे बड़ा **त्यौहार बीज पेडुम है**। बीज बोने से पूर्व मनाने वाला यह त्यौहार मई के पहले या दूसरे सप्ताह में मनाया जाता है तिथि का निर्धारण बुजुर्ग लोग करते है त्यौहार का मुख्य आकर्षण धान के खेत में किया जाने वाला पूजा -अर्चना होता है। पूजा में शामिल होने से पूर्व लोग स्वयं पवित्र होने के लिये हल्दी पानी से स्नान करते है, महुआ पत्ते पर धान रखकर पवित्रता के लिये उस पर भी हल्दी पानी छिड़कते है और उसे बांस के डंडे में बाँघ कर कंधे पर लटकाते है और पूजा स्थल पर जा पहुँचते है। पुजारी खेत में महुए की एक डाल गाड़ता है उसी डाल के नीचे सभी जन अपने साथ लाए धान की पोटली रखते है , **भांजे को महत्व देने के** लिये गांव के किसी भांजे को पूजा करने वाला बनाया जाता है। भांजा नहा कर सूअर, मुर्गी, अंडे को देवी देवताओं को अर्पित करता है, बलि पशु का रक्त, धान एवं चांवल की गठरी में थोड़ा थोड़ा भांजा छिड़कता है। उसी खेत पर चांवल पकाया जाता है। सभी मिलकर भोजन करते है, भांजा खेत में गड़े महुआ डाल के नीचे गडढा कर सभी के जुठे पत्तल गाड़ता है, पूरी तरह से मौन रहकर भांजा ये सारी गतिविधियों संपन्न करता है।

मुन्नेट बेटा, मनेंट पटा किल्लोर कुटट अर्थात पहले जैसा शिकार पहले जैसा पैदावार इस वर्ष भी मिले यह आशा ध्वनि तीन बार उच्चारित की जाती हैं। दोरले पुजारी के दिए बीज को बोने के लिए अपने अपने खेतों की और अग्रसर होते है, खेत में एक स्थान पर उसे गाड़ा जाता है और घर से लेकर आए धान को बोया जाता है। यह बीज पेडुम एक सार्वजनिक उत्सव होता है जिसे पूरे उत्साह व आशा के साथ मनाया जाता है

दोरला गांव की बसाहट उल्लेखनीय है। प्रायः नदियों के किनारे स्थित होने वाले इनके गांवो के मकान पंक्तियों में होते है, गांव के मध्य में पर्याप्त स्थान छोड़ा जाता है यह मैदान मिलन स्थल होता है, बच्चों के लिये खेलकूद का स्थान तो यह है ही सार्वजनिक भोज, नृत्य , गायन के लिये भी यह स्थल प्रयुक्त होता है, पंचायत बैठने के लिये भी

उपयु F स्थल होता है।दोरला को एकता के सूत्र में आबद्ध करने में ये मैदान बड़े सहायक होते हैं। दोरला गांवो में थानागुड़ी नामक स्थान होता है। यह थानागुड़ी गांव का अतिथि गृह होता है, मिट्टी और घासफूस से बना यह मकान बाहर से आए सरकारी कर्मचारियों के लिए ठहरने का स्थान होता है। इनके भोजन व्यवस्था के लिये अठपहरिया नामक एक कर्मचारी होता है जो आठो पहर याने दिन रात सेवा कार्यकर अपने पदनाम को सार्थक बनाता है। गांव वाले उसकी सेवा का भुगतान वार्षिक अनाज देकर करते हैं।

दोरला जनजाति विभिन्न कलाओं में माहिर होता है। बांस के वन निकट होने के कारण बांस की टोकरी, चटाई बनाने में इन्हें महारत हासिल है, मिट्टी के बर्तन और लोहे के औजार भी ये बना लेते हैं अधिकांश गांवों में लोहार मिलते हैं ये दोरलो के बीच रहते, दोरलो जैसे ही हो गए है, शारीरिक बनावट रंग रूप दोरलो जैसे ही है, दोरला लोहार इन्हें कहा जाता है इन्हें दोरला समाज में प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं है, इनके साथ सह विवाह, सह भोज नहीं होता। मिट्टी का काम कुम्हार करता है आंध्र के कुम्हार भी मिट्टी के बर्तन बनाते हैं और इनके इलाके में बेचने के लिए लाते हैं तेलगु कुम्हार मिट्टी के काले बर्तन बनाते हैं जबकि बस्तरके कुम्हार मिट्टी के बर्तन बनाते हैं पकाने का बर्तन, पानी रखने का बर्तन इनके मुख्यतः मिट्टी के होते हैं। दोरलो पैदल ही चलते हैं इनकी औरतें सर पर भारी बोझा रखी मीलो चली जाती है कुछ समृद्ध दोरला परिवार ही बैल गाड़ी का प्रयोग करते हैं यह बैल गाड़ी ग्रामीण बढ़ाई के द्वारा अभिनिर्मित होता है।

दोरला नाचने गाने में सिद्ध हस्त है कोई भी अवसर मिला कि इनका नाचना गाना प्रारंभ हो जाता है। और घटों चलता है। वायसन हार्न माड़ियों की भांति दोरला भी नाचने के समय अपने सिर पर वायसन (गौर) के सिंग का मुकुट पहनते हैं सीमावर्ती आंध्रप्रदेश के रेड्डी लोग हार्न हेंड ड्रेस को तैयार करते हैं और दोरला को बेचते हैं।

दोरले शराब का उन्मुक्त सेवन करते हैं मुख्य रूप से ताड़ वृक्ष से निकला रस ताड़ी का प्रयोग करते हैं। तम्बाखू का सेवन भी ये करते हैं। दोरला जन जाति में संस्कारों की श्रृंखला जन्म के साथ प्रारंभ होती है प्रसव के लिए गांव की अनुभवी स्त्रियां ही सहायक होती है स्थानीय बोली में इन्हें मन्तर सानी कहा जाता है। बच्चा पैदा होने के पश्चात बच्चे का बीड़ (नारा) इन्हीं के द्वारा काटा जाता है लड़की का नारा हंसिए से तथा लड़के का नारा तीर से काटा जाता है। छठवे दिन दूसरे प्रमुख संस्कार नामकरण संपन्न किया जाता है, मां- बच्चे को हल्दी व गरम पानी से स्नान कराया जाता है, तत्पश्चात उपस्थित सभी स्त्रियों को नहलाया जाता है, स्त्रियां गीत गाना प्रारंभ करती है, मन्तर सानी ही नामकरण

करती है। अपने बुजुर्ग के किसी नाम के आधार पर नाम रख दिया जाता है।

दोरला विवाह पद्धति की प्रमुख विशेषता विवाह रस्मो का लड़के के घर पर होना है। कन्या पक्ष के स्त्री पुरूष लड़की को लेकर धूमधाम से गाजे-बाजे के साथ शादी के दिवस प्रातःकाल लड़के के गांव पहुंचकर पड़ाव डालते हैं वर को कोकोड़ और वधू को कोकाड़ कहा जाता है। विवाह पद्धति की एक और विशेषता वर-वधू को पीठ पर चढ़ाकर महिलाओं का घंटो नाचना है। महिलाओं की नाच के पश्चात वर और वधू को हल के दो जुओं पर बैठाया जाता है और हल्दी युक्त गरम पानी में स्नान कराया जाता है। शादी की अंतिम रस्म भांवर की होती है वर- वधू को आंगन में या मंडप में घुमाया जाता है दोरला जाति में विवाह की सारी प्रक्रिया प्रातः 8 बजे से आरंभ होकर संध्या 5-6 बजे तक समाप्त होती है।

दोरला के अंतिम संस्कार भी उल्लेखनीय है किसी दोरला परिवार में मृत्यु होने पर गांव का ढोलिया मृतक के दरवाजे पर ढोल बजाते नाचता गाता है , सगे संबंधी सूचना मिलने पर आते हैं और ढोलिया के हाथ में एक या दो पैसे रखते हैं। ढोलिया मृतक एवं पैसा देने वाले संबंधी के आपसी संबंधों को गीत के स्वर में गाता है। लाश को जलाने की प्रथा है। अग्निदाह के दूसरे दिन सभी भाई बान्धव श्मशान जाते और अस्थियां एकत्र करते हैं। ये अस्थियां कहीं प्रवाहित नहीं कीजाती वरन एक स्थान पर रख दी जाती है दोरला गांवों में इस प्रकार हड्डियों के ढेर प्रायः मिलते हैं।

बस्तर में इस प्रकार शक्तिशाली संस्था जातीय पंचायत को माना गया है दोरलों की जातीय पंचायत प्रबल होती है। कानूनों के उल्लंघन का उन्हें उतना भय नहीं है जितना जातीय नियमों के उल्लंघन का भय रहता है। जातीय पंचायत का प्रमुख दुरूता कहलाता है। जातीय पंचायत के सदस्य जाति के सभी सदस्य होते हैं सामाजिक परम्परा एवं आचार विचार इसके विषय है इसका निर्णय हर हालत में मानना ही होता है।

दोरला जाति में शिक्षा का विकास पर्याप्त नहीं हो पाया है। शासकीय महाविद्यालयों जहां अन्य जनजातियों के बीसियों छात्र मिल जाते हैं वहां दोरला जाति के दो चार छात्र भी मिल पाना कठिन होता है। शिक्षा के लिए स्कूल, कालेज स्वास्थ्य के लिए बेहतर सुविधा सड़क, बिजली, नहर, उद्योग, दोरला इलाके की वर्तमान आवश्यकताएं हैं।

--00--

# अध्याय -18

# बस्तर की गौरवशाली धरोहर धुरवा जाति

धुरवा बस्तर में निवास करने वाली एक प्रमुख जन जाति है। आदिम जातियों पर चर्चा करते समय हमें इस तथ्य को विस्मृत नहीं करना है कि ये वे लोग हैं जिन्होंने अपनी आस्थाओं -संस्थाओं और व्यवस्थाओं की रक्षा के लिए पहाड़ों, घाटियों व घने जंगलों में जा बसना स्वीकार किया। इन्होनें यह स्थायी पाठ हमें पढ़ाया है कि जीवन से भी अधिक कीमती जीवन मूल्य होते है और उनकी रक्षा करना हमारा सर्वोपरि दायित्व है।

बस्तर के मध्यपूर्व में निवास करने वाली धुरवा जाति का इतिहास गौरवपूर्ण है। बस्तर ग्राम से सुकमा तक लगभग 128 कि. मी. के क्षेत्र मे यह जनजाति निवास करती है। बस्तर की जनजातियों का जो सामाजिक स्तरीकरण किया गया है उसमें धुरवा दूसरे क्रमांक पर आते है। बस्तर में निवास करने वाली भतरा जाति क्रमांक एक पर है। सन्-1930 ई. तक बस्तर की सभी जनजातियों को गोड़ शीर्षक से परिणित किया जाता था पहली बार 1931 ई. की जनगणना में विभिन्न जनजातियो की अलग-अलग संख्या ज्ञात की गई उस समय धुरवा लोगों को संख्या साढ़े सत्रह हजार से कुछ अधिक थी।

धुरवा जिन्हें परजा भी कहा जाता है अपनी बोली परजी को भूलते जा रहे है। भतरी बोली का जादू इन पर कुछ इस ढ़ंग से चला है कि ये भतरी को अपनाते जा रहे है। बस्तर में धुरवा जनजाति का इतिहास लगभग 650 वर्ष पुराना है। बस्तर में काकतीय वंश के संस्थापक राजा अन्नमदेव के साथ ये चौदहवी शताब्दी के द्वितीय चतुर्थाशं में आए। वर्तमान में जिस क्षेत्र में ये बसे है यह बसाहट उसी काल से है। एक हीक्षेत्र में उनकी बसाहट प्रमाणित करता है कि ये अपने रक्त संबंधियों के साथ ही रहना पसंद करते है। उन्हीं के बीच जीना मरना इनकी नियति है।

पहले ये लोग परजा कहलाते थे, उनके मुखिया घुरवा कहलाते थे मगर आज सभी परजा अपने को धुरवा कहलाना पसंद करते है। परजा शब्द से हीन भावना का प्रकट होना इसका कारण है। राजपरिवार से जुड़े होने के कारण राजमहल में घटित घटनाओ का इन पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है।अपनी जाति का निर्माता वे राजा को मानते है इस कारण से भी राजा पर इनकी आस्था सर्वोपरि है सन् 1910 में जब राजपरिवार के व्यक्ति ने विद्यमान प्रशासन के विरूद्ध अपना संघर्ष प्रापंभ किया तो धुरवा सहर्ष उसमें सम्मिलित हो गए। ऐतिहासिक दस्तावेज व जन श्रुतियां इसके प्रमाण है। धुरवा संघर्ष के संगठक, प्रचारक व योद्धा थे। इनका नेता गुंडा धर नेतानार का निवासी था, वह लाल कालेन्द्र सिंह

के दाहिने हाथ के रूप मं जाना पहचाना जाता था। दूसरा नेता डेवरीधुर था। धुर धुरवा का परिचायक है।

धुरवा जनजाति कई उपजातियों में विभाजित है, ऐसे धुरवा जिन्होनें गौमांस खाना छोड़ दिया है अपने को **राजा-परजा** कहते है धुरवा जनजाति में अभी भी संयुक्त परिवार है। दो पीढ़ी एक ही परिवार में संयुक्त रूप से रहते है। क परिवार ऐसे भी है जहां तीन-तीन पीढ़ियां एक साथ रहती बसती है। इसेक दो कारण बतलाये गए है पहला कारण तो पारिवारिक लगाव ही है जिसके कारण लोग एक दूसरे का साथ छोड़ना अलग रहना पसंद नही करते दूसरा कारण खेतो को छोटे-छोटे टुकड़े होने देने से बचाना है। परिवार का टुटना यानि खेतो का टुकड़े होना है। परिवार कल्याण कार्यक्रम का बहुत कम असर इस जनजाति पर पड़ा है लगभग 75% परिवारों में तीन या तीन से अधिक बच्चे है।

जनजातियों में टोटमवाद की जड़े गहरी जमी पायी जाती है। धुरवा इसके अपवाद नहीं है। टोटमवाद प्रथाओं एवं विश्वासो का वह समूह है जिसके द्वारा समाज पशुओं, पौधों अन्य प्राकृतिक वस्तुओं जो कि सामाजिक जीवन में महत्वपूर्ण है के मध्य संबंधो की एक विशेष व्यवस्था स्थापित की जाती है। टोटमी बौधे या पशु के वंश निर्धारण माना जाता है। टोटमी प्राणियों या पौधों को नष्ट करना दंडनीय अपराध माना गया है धुरवा जनजाति नाग सांप को सर्वाधिक महत्व देती है। इसे मारने का सीधा अर्थ जाति से वरिष्कृत होना है। कछुआ, कुत्ता, मोर, सिंह भी टोटमी प्राणी है।

जहां तक व्यवसाय का प्रश्न है, धुरवा जनजाति का मुख्य व्यवसाय कृषि है, इनके खेत स्थायी होते है, ये झूम कृषि वाले नहीं है, एक परिवार के पास अधिकतम 40 एकड़ जमीन है, मुख्य फसल धान है। भूमि की उपजाऊ शक्ति कम होने, सिंचाई के साधनों के न होने के कारण सामान्यतः इनकी कृषि एक ही फसली है। धुरवा अपनी बाड़ियों में साग -सब्जी व दाल उगाते है। 85% परिवार कृषि पर अवलंबित है। आदिवासी **अर्थव्यवस्था उपभोग के लिए उत्पादन के सिद्धांत पर आधाति** है वे उतना ही पैदावार लेते है जितना उनके लिए आवश्यक होता है, बचना या बचाकर भविषय के लिए रखना वे नही जानते हैं। धुरवा भी इसके अपवाद नहीं है।

धुरवा अपनी आय का सर्वाधिक भाग भोजन व्यवस्था पर खर्च करते है इसके पश्चात वस्तु व धार्मिक विधि विधान का नंबर आता है। धुरवा पक्का आस्तिक होता है, ईश्वर पर उसकी पूर्ण आस्था है। देवी व देवता दोनों की पूजा अर्चना वह करता है यू तो सम्पूर्ण बस्तर में मां दन्तेश्वरी आराध्य देवी के रूप में प्रतिष्ठित है मगर धुरवा की श्रद्धा इस पर अधिक है। राजा की इष्ट देवी होने के कारण, राजा से घनिष्ट रूप से जुड़े धुरवों की भी

यह इष्ट देवी है परदेशीन माई की अलोकिक शक्ति पर उइन्हे बहुत भरोसा है। इन दोनों के अलावा हिंगलाजिन देवी, ग्रामदेवी, मावली माता आदि प्रमुख देवियां हैं। देवों की भी संख्या अधिक है इनमें बूढ़ादेव, भैरमदेव, पाटदेव, भीमादेव, भंगाराम आदि प्रसिद्ध है। भंगाराम देव को 85% धुरवा मानते हैं। नारियल, सुपाड़ी, फल, चांवल सभी देवता को चढ़ाते है मगर बकरे के साथ यह स्थिति नहीं है। कुछ देव केवल सफेद बकरे की बलि लेते हैं तो कुछ केवल काले बकरे की। इनका भीमादेव भेड़ की बलि लेता है। वर्षा का देवता भैरम देव को माना गया है, वर्षा संबंधी शिकायत वे उसी से करते है, हिन्दू समाज में जो प्रतिष्ठा इन्द्र की है वही धुरवा समाज मं भैरमदेव की है।

रोग किसे नहीं होता मगर इससे बचने के लिए लोगों का आश्रय स्थल अलग-अलग है, धुरवा जनजाति बीमारियों का इलाज जादू टोना, झाड़ फूंक से करती है। सिरहा ही उनका सिविल सर्जन होता है।

धुरवा लोगों क जातीय पंचायत प्रबल है। कानूनों के उल्लघन किए जाने पर सरकार की जेलों का उन्हे उतना भय नहीं था जितना पंचायत द्वारा दिए गए जाति बहिष्कार के दंड से। धुरवा जन जाति में अपनी रक्त -शुद्धता की इतनी चिंता है कि किसी धुरवा द्वारा, निम्न जाति की स्त्री से विवाह गंभीरतम जातीय अपराध माना जाता है और उसे कठोरतम दंड जाति बहिष्कार का दिया जाता है। टोटम प्राणी की हत्या, निम्न जाति के यहां भोजन करना, हत्या के अपराध में जेल की सजा, इन सबके लिए जाति -बहिष्कार का दंड दिया जाता है।

धुरवा जनजाति पर चर्चा तब तक अधूरी रहेगी जब तक इनके **जाति भोज** की चर्चा न की जाय सभ्य समाय एक दृष्टिकोण से एक ही स्तर पर है। दोनों समाज भोज के किसी भी अवसर को हाथ से नहीं जाने देते। सुख और दुख दोनों अवसरों पर ये भोज दिए जाते है। इसके **अवास** एक अवसर **सामाजिक अपराध** करने पर आता है। जातीय पंचायत द्वारा जाति भोज देने की सजा दी जाती है। जाति के सभी व्यक्तियों को **सपरिवार** भोज के लिए आंमत्रित किया जाता है। एक दृष्टि से देखे तो जाति भोज एक प्रकार का आर्थिक दंड ही सिद्ध होता है क्योकि इसके आयोजन पर सैकड़ो रूपये व्यय होता है। छत फूस की होती है। धनुष -बाण, टंगीया, छुरी, बाला इनके मुख्य हथियार है। मनोरंजन का मुख्य साधन नृत्य व गायन है। मुर्गा लड़ाने का शौक भी ये पाल रखे है। आवागमन के साधान का अभाव है अपने पैरों से ही ये भूमि नापते जाते है। पैदल ही आना-जाना करते है।

बाल विवाह की कुप्रथा इनमें नहीं है मगर बहुपत्नी प्रथा है, अधिकांश धुरवा एक से अधिक पत्नियां रखते है। अंर्तजातिय विवाह पूर्णतः निषिद्ध है। धुरवा विवाह पद्धति की एक प्रमुख विशेषता खाद के गड्ढे पर दुल्हा दुल्हन को खड़ा करना है। खाद उपजाऊ शक्ति बढ़ाने वाला होता है। दुल्हन बांझ न रहे संभवतः इसलिए खाद के गड्ढे पर उसे खड़ा किया जाता है। विवाह के प्रायः सभी रस्म दुल्हे के घर संपादित होते है। वधू मूल्य चुकाने की प्रथा है, पत्नी द्वारा नए पति चुने जाने पर, नए पति को भूतपूर्व पति को वधू -मूल्य की वापसी की जाती है। अधिकांश विवाह ममेरे- फफरें भाई- बहनों के मध्य होते है, इस प्रथा को **दूध लौटाना** भी कहा जाता हैं।

नशे की लत धुरवा लोगों को भी है। लांदा, सल्फी, महुये की शराब इनके प्रिय नशीले पदार्थ है। स्त्री -पुरूष दोनों नशे का सेवन करते है। तम्बाखू बड़े -बूढ़े बच्चे सभी खाते है।

बस्तर की धुरवा जनजाति विकास की ओर बढ़ रही है। धीरे-धीरे शहरी संपर्क में आ रहे है और विकास की मंजिले तय कर रहे है। स्कूल, अस्पताल, सड़क, बिजली, नहर, उनके लिए सुलभ हो रहें है आने वाला कल बीते हुए कल की तुलना में निश्चित रूप से बेहतर होगा, धुरवा जनजाति जो कि बस्तर की गौरवशाली धरोहर है नए रूप में हमारे सामने आवेगी, हमें उसी कल की प्रतीक्षा है।

### *धुरवा नृत्य -*

इनका नृत्य बस्तर के नृत्यों से भिन्न है। नृत्य के समय गीत नहीं गाते केवल सीटी बजाते है। नृत्य सैनिक परेड़ से मिलता जुलता है। 20 से 50 नर्तक भाग लेते है। नृत्य के समय की वेश-भूषा आम दिनों के पोशाक से भिन्न होता है।

वाद्य में कई ढोल और बांसुरी वादक रहते है जो नर्तक दल के पीछे पीछे बजाते चलते है ढोल वालों के पीछे कुछ महिलाएं चलती है। यह नृत्य चार-पांच के लाईन से नाचते चलते है। ये आगे पीछे दांये- बायें पीछे मुड़ते नाचते गाते घूमते है। नाच के मध्य सभी नर्तक दल गोल घेरे में खड़े हो जाते है। और नर्तक दल के अन्य सदस्य उनके कंधे में चढ़ते है। और नृत्य करते है। उस समय महिलाएं घेरे में पुरूषों के बीच निकलती है। वे उस समय गीत गाती है। और यही उनका मुख्य नृत्य है।

--00--

# अध्याय-19

# बस्तर की काष्ठकला

## आदिवासी समाज की रचना धर्मिता का जीवंत प्रमाण

छत्तीसगढ़ के दक्षिण -में स्थित बस्तर आदिवासी बहुल इलाका है। क्षेत्रफल की दृष्टि से विस्तृत मगर जनसंख्या की दृष्टि से विरल यह इलाका खोजी दृष्टि रखने वालो को चुंबक की भांति खींचता है। भारत के तीन सर्वाधिक बड़े जिलों में से एक बस्तर था। अब यह तीन जिलों में विभक्त हो चुका है। मुरिया, माड़िया, भतरा, हल्बा, गोंड़, धुरवा, दोरला, प्रभृत जनजातियाँ यहां अपने आंसू व मुस्कानों के साथ जीती है। इतिहास गवाह है कि अपनी आस्थाओं, संस्थाओं व्यवस्थाओं को बचाये रखने के लिए अतीत में ये जातियों उपजाऊ मैदानी भागों को छोड़कर अनुपजाऊ खतरायुक्त पहाड़ी प्रदेशों में जा बसी। इन आदिवासियों की अनेक विशेषतायें समय- समय पर उजागर होती रही है। आत्मनिर्भरता, आदिवासी समाज की रीढ़ है जीवन निर्वाह के लिए जितने कार्य अपेक्षित है, ये स्वयं कर लेते है। आदिवासी स्वयं अपना बढ़ाई, लुहार, कुम्हार, कारीगर होता है।

बस्तर के आदिवासी की एक अन्य विशेषता उसकी कलाप्रियता है। अवकाश के क्षण हस्तशिल्प को समर्पित रहते है। हस्तशिल्प की अति प्राचीन परंपरा इस अंचल में रही हैं। अशिक्षित, असभ्य आदिवासी अनेक उतार-चढ़ाव के बावजूद अपनी अस्मिता बचायें रखने में समर्थ रहा है। सांस्कृतिक मूल्यों को जीवन मूल्यों को कैसे जीवित रखा जा सकता है, यह शहरी आदमी इन आदिवासियों से सीखे। जीवन से भी कीमती जीवन मूल्यों को मानकर ही हम इन्हें बचाये रख सकते है।

बस्तर का हस्तशिल्प आदिवासी समाज की रचना धर्मिता का जीवंत प्रमाण है। भारत के कलात्मक उत्कर्ष के लिए प्रकृति ने पर्याप्त उपादन प्रस्तुत किये हैं। कवि की कल्पनाओं के लिए मूर्तिकार को छेनी और चित्रकार की तूलिका के लिए प्रकृति नें अतिशय समृद्धि प्रदान की है। **बस्तर तो वैसे भी प्रकृति का लाड़ला पुत्र हैं,** वहाँ सृजनशीलता के लिए पर्याप्त अवसर है। आदिवासी शिल्प की लंबी परंपरा कभी पत्थर पर तो कभी लकड़ी पर, कभी धातुओं पर तो कभी मिट्टी व धागों पर उजागर हुई है। पत्थर, लकड़ी, धातु, मिट्टी तो साधन है साध्य तो जीवन दिग्दर्शन करना रहा है। वास्तव में जीवन के कलात्मक पक्ष का संबंध मन या हृदय से है, मन को रूचिकर लगने वाले पदार्थो को अमर रूप देने के लिए चित्रकला, वास्तुकला आदि का प्रादुर्भाव हुआ है। जीवन के विभिन्न आयामों, संस्कृति के प्रतीक चिन्हों का सुन्दर चित्रण बस्तर के हस्तशिल्प में मिलता है।

शुक्रनीति के अनुसार कलाएं अनंत है, मुख्य 64 कलाएं है। जयमंगला के अनुसार भी कलाएं 64 हैं जिनमें से 35 वां कला तक्षकर्म लकड़ी, धातु आदि वस्तुओं

की अभिष्ट विभिन्न आकार में काटना आता हैं। प्राचीन ग्रंथों में तक्षकर्म का उल्लेख प्रमाणित करता है कि भारत में इसकी प्राचीन परंपरा रही है। बस्तर में भी यह परंपरा प्राचीन है बस्तर की काष्ठकला अनेक उतार चढ़ाव के बावजूद अपना अस्तित्व बनाये रखने मं समर्थ रहा है। बस्तर आने वाला प्रत्येक पर्यटक बस्तर की यादगार काष्ठशिल्प के रूप में अपने साथ ले जाना पसंद करता है। यह काष्ठ कलाकृति एक ओर तो पर्यटक की ड्राइंग रूप की शोभा बढ़ाता है, उपहार में देने योग्य अच्छी वस्तु है दूसरी ओर बस्तर में इस कला कीउपासना में लगे मूक आदवासियों को आजीविका का साधन देता है। बस्तर के सीध-सीधे भावविहीन सपाट चेहरे वाले आदिवासियों को देखकर यह कतई आभास नहीं होता कि उसके हाथों में वह जादू है जो निर्जीव लकड़ी मं जान फूंक देता हैं। सजीव रूप प्रदान करना, जान फूंकना ही तो है। यह अद्वितीय महारथ उसे किसी ने सिखाया नहीं है देखकर अनुकरण कर सीखने की अभ्यास कर सिद्ध हस्त होने की पुरातन परंपरा का ही उत्ताराधिकारी है। एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को धरोहर के रूप में विरासत के रूप में यह कला हस्तांतरित होती गई हैं। आदिवासी कलाकार अपनी संतान को धरोहर के रूप में इस आशा प्रत्याशा के साथ सौंपता है कि परंपरा टूटे नहीं, लड़ियों बिखरे नहीं।

बस्तर के आदिवासियों ने काष्ठकला को कब से अपनाया है इसके बारे में निश्चित रूप के कुछ कहा नहीं जा सकता। कारण स्पष्ट है आदिवासी परंपरा अभी भी मौखिक परंपरा है। यह कहा जाता है कि महाभारत के काल से यह परंपरा अनवरत रूप से चली आ रही हैं। एक दंत कथा प्रचलित है जिसके अनुसार एक गांव से पांड़व अर्जुन गुजरे वहां भगवान कृष्ण गोपियों से घिरे हुए थे। अर्जुन समय व्यतीत करने के लिए वन की ओर चले गये। वहां एक पुरानी दीवाल थी। उस पर वे युवतियों के चित्र बनाने लगे। बस्तर का एक आदिवासी यह देख रहा था। अर्जुन के वहां से चले जाने के पश्चात उसने उस कलाकृति को स्वयं देखा और अपने भाईयों को दिखलाया सभी ने चित्रों को पसंद किया। उसी दिन से चित्र बनाने की कला आदिवासियों में लोकप्रिय हो गई।

भारतीय कला की एक विशेषता उसमें अंकित सांस्कृतिक जीवन की सामग्री है। राजा और प्रजा दोनों के ही जीवन का खुलकर चित्रण किया गया है। कला मानों साहित्यिक वर्णनों की व्याख्या प्रस्तुत करती है कोई चाहे तो कला की सामग्री से भारतीय जीवन और रहन सहन का इतिहास लिख सकता है। भारतीय वेशभूषा-केश विन्यास, आभूषण, शयनासन आदि की सामग्री चित्र, शिल्प आदि में मिलती है। **बस्तर की कला में भी बस्तर का दिग्दर्शन होता है** बस्तर को समझने में ये कलाकृतियां सहायक सिद्ध हो रही है।

बस्तर के आदिवासियों के लिए कला केवल कला के लिए नहीं वरन जीवन के लिए है कला की उपयोगिता से संबंध में बस्तर का आदिवासी मार्ग प्रदर्शक हो सकता है। सुप्रसिद्ध नृतत्व शास्त्री बेरयिर एल्विन ने लिखा है-" भारत के आदिवासियों की कला का असली महत्व उपयोगिता की दृष्टि से है इसलिए हम उसे उपयोगिता अथवा सामाजिक

उपादेयता से अलग करके कभी भी नहीं समझ सकते हैं। आदिवासियों में कला कला के लिए नहीं होती , इनके लिए कला धार्मिक अथवा जादू टोने के उद्देश्य की पूर्ति करती है और इसका सामाजिक महत्व होता है ।इनकी कला का लक्ष्य केवल मात्र सौन्दर्य अथवा अलंकरण नहीं होता है।''

यह कटु सत्य है कि बस्तर का आदिवासी काष्ठकला के संवर्धन में तो शताब्दियों से लगा है मगर काष्ठ को सुरक्षित रखने के लिए कुछ उपक्रम करता दिखलायी नहीं देता। इसी कारण से काष्ठकला के अनेक सुंदर सजीव प्रतीक नष्ट हो गये । कला जीवन को प्रतिबिंबित करती है। ऐसी स्थिति में बस्तर की काष्ठकला, श्रमपूरित, बलिष्ट शरीर को प्रदर्शित करने में कैसे चूक सकती है बस्तर की आदिवासी बाला अपने पुष्ट शरीर के लिए मांसलता व मादकता के लिए चर्चित रहती है , अनवरत श्रम ने आदिवासी बाला के शरीर को पुष्ट बना डाला है। आदिवासी बाला काष्टकला की विषय वस्तु रही, केशसज्जा के विभिन्न प्रकार, कंधी युक्त जूड़ा नृत्य के वाद्य यंत्र, नृत्य की भावभंगिमायें सुन्दर ढंग से काष्ठ में उकेरी गई है। मुरिया माड़िया, स्त्री पुरूष, नर्तक युवक -युवती, शेर, कंधी. चिड़ियां तो विषय वस्तु है ही तीर धनुष,गेड़ी, चेहरे, पानी का घड़ा रखने वाला लकड़ी का पगाड़ आदि पर भी अनेक प्रकार के डिजाइन व चित्रों की खुदाई मिलती है। मुरिया जनजाति विभिन्न आकार प्रकार की कंधियां, नक्काशीयुक्त अनवरत मेहनत कर बनाती है। ये कंधियां प्रेमपूर्वक प्रेमिका को अर्पित की जाती है, इन कंधियों के मोल को वहीं जान समझ सकता है, जो इसे देता है या पाता है। **प्रेम प्रतीक ये कंधियां मुरिया युवती की संपत्ति होती है।**

बस्तर की माड़िया जनजाति भी काष्ठकला को अपनायी हुई है। बस्तर क प्रतीक रूप में गौर सिंग पहने हुए दंडामी माड़िया को प्रस्तुत किया जाता है मृत व्यक्ति की स्मृति को चिरजीवी बनाये रखने के लिए मृतक स्तंभ गाड़ने की परंपरा आदिवासी समाज में पुरातन काल से है, ये स्तंभ '**बीत**' कहलाते है यहाँ उल्लेख कर देना अप्रासंगिक नहीं होगा कि बीत में कलागत वैभव नहीं रहता, किन्तु उन्हें देखने पर भव्यता व श्रेष्ठता के भाव बोध अवश्य मिलते है। खंभ के रूप में लकड़ी का इस्तेमाल सबसे अधिक किया जाता है, लकड़ी खासतौर से शाल या सागौन की इस्तेमाल की गई है। इस काम में एक पेड़ के पूरे तने का इस्तेमाल किया जाता हैं तने को चारोंओर से समतल किया जाता है और उस पर मृतक के प्रिय अस्त्र शस्त्र, जानवर, हल, बैल, पशु-पक्षी और कीट पतंगो को उकेरा जाता है। गौर नृत्य की वेशभूषा में नर्तक और नर्तकी अक्सर देखने को मिलती है। लकड़ी से निर्मित इस प्रकार के मृतक स्तंभ काष्ठशिल्प और परिवेशगत कला चेतना के श्रेष्ठ उदाहरण है। लकड़ी पर अत्यंत बारीक और महीन काम देखने को मिलता है '' श्री नवल शुक्ल ने माड़िया कला के संबंध में अवलोकन के पश्चात अपनी टीप दी है।

बस्तर की यह परंपरागत काष्ठकला शहरी लोगों को भी आकर्षण देने लगी है।

आदिवासी काष्ठ कला के कलाकार व खरीददार दोनों तैयार हो चुके है। पुरानी कला नई भाव भूमि पर आ खड़ी हुई है। जगदलपुर व अन्य नगरों में ऐसे अनेक केन्द्र स्थापित हो चुके हैं , संचालित हो रहे है।जहाँ काष्ठकला का प्रशिक्षण दिया जाता है। समय की मांग व बाजार की मांग पर मुख्य ध्यान देने के कारण **मूल आदिवासी कला अपनी पहचान खोती जा रही** । ऐसे दृश्य काष्ट में उकेरे जा रहे हैं, जिनका आदिवासी जीवन से दूर - दूर तक वास्ता नहीं। सागौन या साल की लकड़ी पर पहले चित्र बनाया जाता हैं फिर छोटे - छोटे बारीक छैनियों की सहायता से हथौड़े की मार से काट छांट कर छीलकर आकार को लकड़ी पर उकेरा जाता है। पारंपरिक भद्दे औजारों के स्थान पर चमचमाते उन्नत औजार प्रयुक्त होने लगे हैं।उतार-चढ़ाव, बारीकी पर विशेष ध्यान दिया जाता हैं। घंटों का परिश्रम एक कलाकृति को प्रस्तुत कर पाता है। आदिवासी जीवन से जुड़ी घटनायें स्थान पाती, मुर्गा लड़ाई व मुर्गा बाजार, वृहदाकार रथ व दशहरा उत्सव को दृश्य मेले मड़ई विषय वस्तु बन चुके है। शहरी जीवन में नेमप्लेट लगाने का अपना रिवाज है। काष्ठकला युक्त नेम प्लेट शहरों की दीवालों पर दिखने लगे है। राष्ट्रीय प्रतीक चिन्ह, विभिन्न संस्थाओं व क्लबों के प्रतीक चिन्ह काष्ठ कला के विषय बन चुके है धनिक वर्ग और आगे बढ़कर दरवाजे के पल्लों पर बड़े-बड़े आदिवासी दृश्य उकेर करवाना चाहता है। सोफा सेट व दीवालों पर काष्ठकला के नमूने मोहक लगते ड्राईंग रूप की शोभा के साथ साथ ये कृतियां पूर्ण सुरक्षा भी प्राप्त करती है। आदिवासी कला के बाजार में आने से लाभ व हानि दोनों हुए है। विक्रय के लिए अर्थशास्त्र को मांग व पूर्ति नियम लागू होता है। मांग के अनुरूप जब कला कृति बनायी जाती है,तो उसके स्वरूप में परिवर्तन होना वांछित है ऐसी स्थिति में कला साधना न होकर जीवन निर्वाह का साधन बन जाता है बस्तर में भी यह हो रहा है।

कला के क्षेत्र में बस्तर की घड़वा कला अपनी जड़े जमा चुकी है, काष्ठकला धीर-धीरे लोकप्रिय होती जा रही है। बस्तर की कला को उसके मूलरूप में देखना हो तो गांव के कलाकार से मिले उसकी कृति को देखें । शिल्पकार यह जानते हुए भी, यह मानते हुए भी कि जितना समय श्रम वे इसमें लगाते है। उसकी तुलना में धन की प्राप्ति नहीं होती मगर बस्तर का शिल्पकार, बस्तर के आदिवासियों का ही तो प्रतिनिधि हैं। जहाँ शहरी दान प्रतिदान (कागज के नोटों ) का नियम लागू नहीं होता। यश की प्राप्ति ही वह कारक है, जिसके चलते बस्तर का आदिवासी शिल्पकला धन न पाने के बावजूद पीढ़ी दर पीढ़ी काष्ठ व अन्य कलाओं को संचरित करते आ रहा है,गांव का एक शिल्पी पूरे गांव को प्रसिद्धि देने वाला होता है। गोलावंड नामक गांव अपने शिल्पी सुकमन और रामू राम के कारण ही चर्चित है। मावलीमाता, बुढ़ीमाता, प्रदीष माता, कंकालीन व हिंगलाजिन की मूर्तियां वे बनाते है।बस्तर में आदिवासी काष्ठकला को नवीन रूप देने का श्रेय अरूण गुहा को है। आदिवासी को प्रशिक्षण देने की व्यवस्था वे कर चुके है, डान्सिग केक्टस नामक उनकी

संस्थ बस्तर की काष्ठकला को देश विदेश तक पहुंचाने में सफल रही है 1972-93में श्री गुहा को इस कार्य के लिए सर्टिफिकेट आफ मेरिट नेशनल अवार्ड भी मिल चुका है । रमेश मुकर्जी, सुकपाल धुरवा, झितरूराम, कालीपद मंडल लक्ष्मी धर, मनीराम भतरा को भी अनेक पुरस्कार इस निमित्त मिल चुके है।

भारत की सांस्कृतिक राजधानी के रूप में उभर रहे भोपाल स्थित भारत भवन मे बस्तर की कलाकृतियों को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। काष्ठकला के कई सुन्दर नमूने वहां प्रदर्शित है, देश विदेश से आए पर्यटक इन कृतियों को देखकर आश्चर्य चकित रह जाते है। जगदलपुर नगर स्थित एन्थ्रापोलाजिक म्यूजियम में भी आदिवासी काष्ठकला के सुन्दर नमूने देखे जा सकते है। म्यूजियम के आंगन में काष्ठ का एक मृतक स्तंभ चित्रकूट के पास से उखाड़ कर लाया गया है, प्रदर्शित किया गया है।

बस्तर का काष्ठशिल्पी अपनी कला को बाजार में पहुंचाकर संतुष्ट है या असंतुष्ट कहा नहीं जा सकता मगर यह तो निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि इससे बस्तर की काष्ठकला को लोकप्रियता मिली है। शहरीलोगों का रूझान इस ओर बढ़ा है काष्ठकला के बाजारू रूप को देखकर ही हमें संतुष्ट नहीं रह जाना है थोड़ा कष्ट उठाकर आदिवासी गांवो तक पहुंचना होगा और परंपरागत कला को उसके मूल रूप में देखना होगा मुरिया घोटुल के दरवाजों पर , पल्लों पर,लकड़ी के सिरहानों पर, विवाह- स्तंभों, मृतक स्तंभों की काष्ठकला को देखना होगा तभी शहरी व आदिवासी कला के भेद को समझा जा सकेगा।

कलाकार चाहे वह बस्तर का आदिवासी ही, चाहे महानगर का ही आत्मस्थ सौन्दर्य को उत्प्रेरक कल्पना के सम्मिश्रण से उपादान द्वारा रूप प्रदान करता है।इसमें उपादान की अपेक्षा आंतरिक सुकुमार भावों की ही प्रधानता रहती है। तात्पर्य यह है कि उपादान कैसा ही क्यों न ही यदि कलाकार में सौन्दर्य सृष्टि की उत्कृट क्षमता है तो वह भावों का व्यक्तिकरण सफलतापूर्वक कर देगा। बस्तर की परंपरागत काष्ठकला दर्शनीय है संग्रहणीय है। बस्तर की काष्ठकला को बढ़ावा देना हमारा फर्ज है आदिवासी कला अपने मूल रूप को बचाये रखने की अपनी लड़ाई में सफल हो यही कामना है।

--00--

अध्याय -20

# बस्तर का लमसेना

लमसेना - शिव सेना या नागसेना जैसी कोई सेना नही, यह बस्तर के वैवाहिक जीवन से संबंधिक एक सामाजिक संस्था है बस्तर अजूबों से भरा है। उन्ही अजूबों में से एक अजूबा है यह लमसेना लम्ब सेवन शब्द को सामने रखकर लमसेना की अर्थवत्ता तक पहुँचा जा सकता है। प्रमाण तो नहीं दे सकता लेकिन मुझे इस शब्द की व्युत्पत्ति भी लम्बसेवन से ही लगती है। लम्बे समय तक टहल, सेवा और खिदमतगारी करने की प्रक्रिया ही कालांतर में संज्ञावत हो गई लगती है।

असल बात यह है कि लमसेना एक हृष्ट पुष्ट तरूणाई के द्वार खटखटाने को आतुर किशोर है, जिसकी मसें भीग रही हैं। अशिक्षित या अर्ध -शिक्षित है यह लमसेना आर्थिक दृष्टि से सर्वहारा, **आर्थिक विवशता की पराकाष्ठा से यह लमसेना बना है,** विचित्र बात यह कि अपने घर और मां बाप के रहते हुए भी दूसरे के घर में रहने को विवश है।

लमसेना, साध्य, साधन और साधक का एक विचित्र त्रिकोण है। साध्य है पत्नी की प्राप्ति, साधन हैं सेवा और साधक तो वह स्वयं ही है। उत्तरी बस्तर में विवाह से पूर्व खरचा (बधू-धन ) देने की प्रथा है यह खरचा कुछ रुपयों के अतिरिक्त अन्न और वस्त्र के रूप में होता है। जो व्यक्ति गरीब होता है। जिसके माता पिता खरचा नहीं दे सकते उस युवक को अपने भावी ससुराल में तीन या पांच वर्षो तक सेवा कार्य करना पड़ता है और खरचा चुकाना पड़ता है। बस्तर के माड़िया,मुरिया, भतरा, सुन्डी, पनका, महरा, कुम्हार जैसी अन्य जातियों नें भी इस प्रथा को अपना लिया है। घर जिया भी इसे कहा जाता है।

तीन या पांच वर्षो का यह सेवा काल लमसेना के लिए परीक्षा की घड़ी होती है। आजकल की चाकरी वाली भाषा मे इसे **प्रोवेशनरी पीरियड** भी कहा जा सकता है। इस बीच यह देखा जाता है कि वह क्या कर सकता है ? उसका व्यवहार कैसा है ? क्या यह जीवन संघर्ष में विजयी हो सकता है ? क्या भावी पत्नी को सुखी रख सकता है ? परीक्षा

की ये घड़ियां लमसेना के लिए बहुत महत्व रखती है।

'आयतु' हिंड़मा, 'दुखीराम', सुखीराम चाहे कुछ भी भी नाम उस किशोर का क्यों न हों, भावी ससुराल में आने पर वह सिर्फ लमसेना रह जाता है। इसी नाम से वह पुकारा भी जाता है। अमुक के लिए यह लमसेना है इस रूप में उसका परिचय उसकी भावी पत्नी का नाम लेकर कराया जाता है। लमसेना आवाज लगी और लमसेना उपस्थित ! आदेश दीजिए बजा लाएगा - कुछ कुछ अलादीन के चिराग के भूत की तरह।

लड़की जानती है कि यह मेरे लिए खट रहा है। प्रारंभ में उसका व्यवहार रुखा रूखा रहता है। मगर लमसेना अपनी सेवा से जहां सास-ससुर को प्रसन्न करता है वहीं भावी पत्नी का मन भी जीत लेता है। थोड़े बहुत अंतराल के साथ दोनों वय संधि की अवस्था से गुजरते है। दोनों एक दूसरे को देखकर यौवन की देहली पर पांव रखते है। एक मूंछो की रेख देखती है तो दूसरा कनखियों से वक्ष के उभार को लक्ष्य करता है। भीतर भीतर रागात्मकता का स्त्रोत अन्तः सलिला की भांति फूटता है। ऊपर ऊपर की रूक्षता के बीच मन की गहरी परतों में आत्मीयता प्रसार पाने लगती है ठीक दूब की तरह, जो ऊपर की तुलना में धरती के अंदर अपनी जड़ें अधिक जमाती है।

जब उसके अन्य समवयस्क युवक उन्मुक्त रूप से जीवन का आनंद ले रहे होते है, तब वह मन मारकर खट रहा होता है। घोटुल का आकर्षक वातावरण मुरिया युवकों को हर्षाने वाला है, मगर मुरिया लमसेना को घोटुल भी टीसता है। वह लमसेना है न घोटुल में वह जा तो सकता है मगर अपनी भावी पत्नी से वहां भी उसे दूर ही रहना पड़ता है, वह लमसेना है। मोटियारी से मिल सकता है बात कर सकता है मगर वह अपने लमसेना होने की बात को भूल नहीं सकता। वह मानो इस बीच केवल एक मशीन है - भाव शून्य अपने स्वामी के आदेश पर चलना व रूकना ही उसकी नियति होती है।

नदी के किनारे पर स्थित फिर भी प्यासे का प्यासा! लमसेना यह सोचकर मन को धीरज बंधाता है कि नदी तो मेरी ही है। प्यास आज नहीं तो कल बुझेगी। लमसेना जब अपने भावी ससुराल में सेवा करके विवाह कर पत्नी के साथ अपने घर लौटता है तो यह उसके पिता के लिए हर्ष का अवसर होता है। अपने संबंधियों को भोज देकर अपनी खुशी का इज़हार करता है। मगर कभी कभी जब लमसेना देखता है कि उसकी नदी छिनी ज़ा रही है। तब वह व्याकुल हो उठता है। एक लमसेना के लिए सबसे खराब स्थिति तब आती है जब कोई दूसरा व्यक्ति पैसे के बल पर उसे हटाने की कोशिश करता है। लमसेना से कहा जाता है - रास्ता नापो ऐसे में दर्द भरे मन को निरीहता कितनी मर्मान्तक होती होगी, इसकी

कल्पना ही की जा सकती है टूटे हुए सपनें उजड़ा हुआ घर और इन सब के बीच निराश लमसेना।

बड़ा करूण लगता है। हाय रे अर्थ ! हाय रे अर्थ के अनर्थ। कई सवाल उसको एक साथ मथ रहे है - मेरा क्या मैं फिर लमसेना बनूं ? बनूं भी तो क्या गारंटी है कि इस बार भी वही कुछ नहीं होगा-लोग कहते हैं कि इतिहास अपने को दोहराता हैं और फिर पल. घंटे, मांस के सहारे जीवन के जो क्षण बीत गए हैं, उनका क्या होगा ? समय वापस लौटता है क्या ? उम्र तो कभी वापस नहीं आती।

ऐसे में लमसेना और उसके पिता पंचायत बुला सकते हैं और पंचायत भी क्या करेगी? बस कुछ रूपये मुआवजे के रूप में लमसेना के बाप को मिल जाएंगे लमसेना का अधेड़ उम्र का साधनहीन बाप इनं रूपयों को पाकर संतोष कर सकता है, लेकिन लमसेना क्या पाकर संतोष करे - कड़वे घूंट ही है उसके पीने के लिए।

लमसेना कौन रखता है ? प्रायः ऐसा परिवार जिसके पास संतान के नाम पर एक ही कन्या रहती है और जो चाहता हैकि उसका भावी दामाद को लमसेना के रूप मं रखकर वह उसका मूल्यांकन करता है। कसौटी पर खरा उतरने पर कन्या का हाथ लमसेना को थमा देता है। तब लमसेना, घर जंमाई हो जाता हैं। यदि इसे प्रोबेशनरी पीरियड में लमसेना निकम्मा, कामचोर पाया गया, तो उसे उसके श्रम का मुआवजा रूपयों में अदाकर दिया जाता है। लमसेना की सामाजिक प्रतिष्ठा लगभग कुछ नहीं होती। परिवार में भी वह दोयम दर्जे का सदस्य होता है। घर जमाई की स्थिति का एक वर्णन महाकवि बिहारी ने किया है-

**आवत जात न जानियत,तेजहि तजि सियरान**
**घरंह जंबाई लौं घटयों, खरो पूस दिनमान॥**

लमसेना की स्थिति उससे भी बदतर होती है वेरियर एल्विन ने बस्तर की घोटुल प्रथा पर एक वृहद ग्रंथ ही लिख डाला है घोटुल की रंगीनी उन्हें भाई, लेकिन अस्तित्व को घुलाकर खटने वाले लमसेना का दर्द उन्होनें अनदेखा ही कर दिया। आखिर क्यों ? लमसेना संस्था के अनेक सामाजिक संदर्भ है।

--००--

अध्याय-21

# मुरिया कला एक शोध दृष्टि

छत्तीसगढ़ के दक्षिण में स्थिर बस्तर संभाग है, बस्तर का कुल क्षेत्रफल 39,114 वर्गकि.मी.[1] तथा जनसंख्या 22,70,472 है। $17^0 46''$ से $20^0 34''$ उत्तरी अक्षांश तथा $80^0 15''$ से $82^0 15''$ पूर्वी देशांश के मध्य यह अंचल स्थित है। विस्तृत भू-भाग के अलावा अनुसूचित जनजातियों की बहुलता , बहुमूल्य खनिज सम्पदा से भरा, सागौन जैसे मूल्यवान वृक्षों से भरा वनांचल, बस्तर को कलम वं कैमरे का केन्द्र बनाये हुए हैं। मध्य भारत गोड़ों का केन्द्र स्थल है , बस्तर अंचल में भी गोंड़ जनजाति की कई शाखाएं निवास करती है , इनमे से एक मुरिया जनजाति भी है, यही मुरिया जनजाति हमारे शोध पत्र की विषय वस्तु है। बस्तर अंचल में मुरियों की जनसंख्या लगातार बढ़ती जा रही है। 1931 में पहली बार आदिवासियों की शाखाओं की अलग अलग संख्या दर्ज की गई है। उस समय मुरियों की संख्या 1,24,993 थी।[2] यह 1941 में बढ़कर 219654 हो गई। 1961 की जनगणना रिपोर्ट में आखिरी बार पृथक पृथक संख्या दी गई। उस समय बस्तर अंचल में मुरियों की कुल संख्या 3,10,675 थी।[3] यह संख्या सही नहीं है। मुरियों की वास्तविक संख्या इससे कम है। बस्तर के आदिवासियों को यह ज्ञात हो चला है कि मुरिया अच्छी जनजाति मानी जाती है। अतः सामाजिक प्रतिष्ठा पाने के लिए गैर मुरियों ने भी अपने को मुरिया दर्ज करवा रखा है। मुरिया जनजाति को विश्व में प्रचालित प्रसारित करने का श्रेय वेरियर एल्विन को जाता है। 1947 ई. में **मुरिया एंड देयर घोटुल**[4] नामक वृहदाकार ग्रंथ प्रकाशित कर उन्होंने मुरियों को आकर्षण का केन्द्र बना दिया है। मुरिया जनजाति व मुरिया अंचल अर्ध शताब्दी से चिंतन मनन, अध्ययन- अनुशीलन का केन्द्र बना हुआ है। बस्तर वैसे भी नृतत्व शास्त्रियों और समाज शास्त्रियों के लिए स्वर्ग है, इतनी प्रचुरता, विविधता और बहुरंगी चित्र अन्यत्र प्राप्त नहीं होता।[5] विभिन्न प्रजाति तत्वों का मिश्रण होने के कारण भारत को प्रजातियों का अजायब घर भी कहा जाता है। गोंड़ों की 53 उपजातियों, अनुसूचित जनजाति संबंधी आदेश में अंकित है।[6] बस्तर में निवास करने वाली मुरिया जनजाति को अन्य जनजातियों की अपेक्षा अधिक सुसंस्कृत और समझदार माना जाता है। ये कला और संगीत के प्रेमी होते हैं, बस्तर के मुरिया प्रमुखों के अनुसार बस्तर के राजाओं ने गोड़ों को माझी मुखिया बनाया और हमें मुखिया नाम से संबोधित करते थे। यही मुखिया शब्द कालांतर में प्रचलन में घिसते-घिसते मुरिया रह गया।

अपने भावों व विचारों को अभिव्यक्त करने के अनेक माध्यमों में से कला भी एक है। **भारतीय कला भारतवर्ष के विचार धर्मतत्व, ज्ञान और संस्कृति का दर्पण**

है। भारतीय जनजीवन की पुष्कल व्याख्या करना ही कला का अभीष्ट रहा है। कला की सामग्री से भारतीय जीवन और रहन सहन का इतिहास लिखा जा सकता है। भारतीय वेशभूषा, केश विन्यास, आभूषण आदि की सामग्री चित्र शिल्प में मिलती है। भारतीय विचारक वात्सायन ने अपने वृहदाकार ग्रंथ कामसूत्र में चित्रकला के 6 अंग बताये। रूप, भेद, प्रमाण भव, लावण्य,'योजना, सादृष्य। इन 6 अंगों का पालन अवश्य किया जाना चाहिए।[9] वात्सायन के मापदण्ड से मुरिया कला अधूरी है क्योंकि इसमें उपरोक्त 6 अंग पूरे के पूरे नहीं मिलते।

बेरियर एल्विन ने मुरिया समाज की रीढ़ घोटुल संस्था के बारे में इतने विस्तार से लिखा है कि मुरियों के जनजीवन से संबंधित अन्य आयाम उपेक्षित हो गए। शोध छात्रों का शोध केन्द्र घोटुल ही बना रहा। मुरिया कला, मुरिया जनजाति को समझने में महत्वपूर्ण उपादान है। साहित्य को समाज का दर्पण कहा गया है, काफी हद तक कहा जा सकता है कि कला भी समाज का दर्पण होता है, वास्तव में कलाएं समाज का प्रतिबिम्ब होती है।[10]

आदिवासी चाहे वह बस्तर का हो चाहे आसाम का एक साम्यता अवश्य मिलती है वह है इनकी कलाप्रियता। यह तथ्य हमें विस्मृत नहीं करना होगा कि उनकी कला हमारे मापदण्डों में खरी नहीं उतरती। आदिवासी विश्व और आदिवासी भारत पर गहन अध्ययन मनन के पश्चात वेरियर एल्विन ने लिखा है - भारत के आदिवासियों की कला पश्चिमी अफ्रीका के आइवरी कोस्ट के समान विकसित नहीं है. वेनिन, न्यूजीलैंड, उत्तरी अमेरिका और प्रशांत द्वीपों के कुछ भागों में जो सुन्दर चेहरे बनाए गये थे हमारे आदिवासियों की कला उनकी भी समता नहीं कर सकती। फिर भी हम यह नहीं कहते कि हमारे आदिवासियों की कला बिलकुल गई गुजरी है। उनकी कला को हम अपने जीवन स्तर की दृष्टि से नहीं परख सकते। इस कला में वास्तव में परिप्रेक्षण का अभाव है, सत्य को अक्सर विकृत कर दिया जाता है; बातों को अजीब और भद्दे रूप में बढ़ा चढ़ा दिया जाता है। भारत में तो कला की ऐसी बहुत सी चीजें हैं जिनका पहली नजर में कोई महत्व प्रतीत नहीं होता।[11]

यहां यह स्पष्ट कर देना समीचीन होगा कि कला का मूल्यांकन बहुत कुछ नजरिया पर अवलम्बित रहता है। कलाकार के नजरिये से देखने पर ही कला का अन्तःनिहित सौन्दर्य परिलक्षित हो सकता है। कलाकृतियां समाज, प्रकृति, मानव और ईश्वर के प्रति उस कलाकार के भावों व विचारों को प्रतिबिंबित करता है। इस दृष्टिकोण से देखने पर मुरिया कला में हमें प्रेम तत्व की प्रमुखता मिलती है। मुरिया कला, बस्तर की एक अन्य जनजाति माड़ियों की कला से कई अर्थों में अलग प्रतीत होती है, इस अन्तर के मूल में दोनों जनजातियों की मूल प्रकृति है।[12] प्रेम तत्व की प्रमुखता के कारण मुरियों का कला रूप अत्यन्त सारगर्भित बहु आयामी और रूचि वैभिन्न का प्रतीक है।[13] मुरिया समाज में

ा, प्रेम की अभिव्यक्ति का एक माध्यम है। जिसे चाहा जाता है, जिससे प्रेम किया जाता है उसका मन जीतने के लिए कलाकृति भेंट की जाती है। यह कलाकृति खरीदी हुई नहीं वरन सैकड़ों घण्टे लगाकर मनोयोग से बनायी हुई होती है। प्रेमिका यह जानती है कि भेंट की हुई वस्तु घण्टों की मेहनत समेटे हुए हैं इसलिए मूल्यवान है। जिस कलाकार की साधना सफल होती है उसे साध्य की प्राप्ति होती है। वह सफल साधक सिद्ध होता है। साध्य, साधक व साधन के त्रिकोण से मुरिया कला को सही अर्थों में समझा जा सकता है।

आदिवासी बहुल बस्तर, हस्त शिल्प का पर्यायवाची बन गया है। देश विदेश में समय समय पर आयोजित प्रदर्शनियों में यहां के अनगढ़ किन्तु कलात्मक हस्त शिल्प को सभी ने सराहा है। देश की सांस्कृतिक राजधानी भोपाल, स्थित भारत भवन को सजाने संवारने में भी बस्तर के हस्त शिल्पियों का विशेष महत्वपूर्ण योगदान रहा है।[14] अप्रशिक्षित, असभ्य और जंगली समझे जाने वाले आदिवासियों ने अक्षर ज्ञान से अपरिचित होकर भी अपनी संस्कृति व सभ्यता को शताब्दियों पूर्व से अपने अद्भुत हस्त शिल्प के माध्यम से न केवल जीवित रखा बल्कि पीढ़ी दर पीढ़ी उसे संप्रेषित किया। बस्तर का पुरातन इतिहास उनके हस्तशिल्प में छिपा हुआ है।[15]

हजारों वर्षों के फैले काल फलक पर गवेषणात्मक दृष्टि डालने पर हम पाते हैं कि अपना सांस्कृतिक विकास करने के लिए मानव ने संस्कृति के जिन अंगों से श्रीगणेश किया था उसमें चित्र कला भी एक थी, निदान संसार भर में आदिम मनुष्य के वनवासी गुहा गृह में अंकित चित्र मिलते हैं। उनके चित्रों का इतिहास एक हजार वर्षों से पूर्व अज्ञात है।[16]

मुरिया समाज में चित्रकला को पर्याप्त सम्मान प्राप्त है। चाहे घर द्वार ही चाहे देवगुड़ी हो चाहे ही घोटुल घर सर्वत्र चित्रकारी के नमूने अनायास दिख जाते हैं। चित्रकला के लिए केवल रंग व कूंची का आवश्यकता होती है, इस कारण यह खर्चीली नहीं है। किसी भी दीवार पर मनचाही आकृति बनायी जाती है। और उसे उपलब्ध रंगों से रंग दिया जाता है। मुरिया चित्रकला में मुरिया समाज का प्रतिबिम्ब देखा जा सकता है। चित्रकला मुख्य रूप से मुरिया जन से संबंधित प्रत्येक सामाजिक धार्मिक स्थल के साथ- साथ घर की दीवालों में बनाये जाते हैं। मुख्य रूप से मुरिया जन में नवाखानी (नए फसल को उपयोग में लाने से पूर्व देवार्पण का उत्सव) के समय मंगल आकृति पर की दीवालों पर बनाने की रीति है। यह युवतियों द्वारा ही बनायी जाती है, मंगल सूचक आकृतियां प्रत्येक सामाजिक धार्मिक स्थलों की दीवालों पर भी बनायी जाती है।[17]

बस्तर के आदिवासियों में काष्ठकला की सुदीर्घ परम्परा रही है। उल्लेखनीय है कि यह काष्ठ कला चित्रकला पर ही अवलम्बित है, काष्ठकला के लिए चुने गये काष्ठ

फलक पर सर्वप्रथम वांछित चित्र बनाया जाता है। चित्र जितना स्पष्ट व सजीव बनेगा उतनी ही स्पष्ट व सजीव काष्ठकृति बनेगी। काष्ठ फलक पर बनाये गये चित्र को अनेक छोटे छोटे छेनियों व हथौड़ों के द्वारा काटा व तराशा जाता है, गहराई व उभार लाया जाता है। भारत में पत्थरों पर चित्र उत्कीर्ण करने की सुदीर्घ परम्परा रही है, उसी के समानान्तर लकड़ी पर चित्र उत्कीर्ण करने की परम्परा भी रही है। बस्तर की इस काष्ठकला की सर्वाधिक उल्लेखनीय विशेषता यह है कि यह किसी जनजाति विशेष की नहीं है। जिसका हाथ सध गया उसने इसे अपना लिया और पीढ़ी दर पीढ़ी संचरित होती यह परम्परा के रूप में धरोहर के रूप में हस्तांतरित होती गई। मुरिया जनजाति भी इस काष्ठकला को अपनाये हुए हैं। इन काष्ठकृतियों में माता, देव, देवी की सवारी, मुरिया, माड़िया, नर्तक, युवती, बच्चा, शेर, कंघी, चिड़िया आदि प्रमुख है। दैनिक उपयोग की वस्तुएं भी काष्ठकला से अलंकृत मिलते हैं। तीर-धनुष, गेड़ी, पानी का घड़ा रखने वाली तिपाई तम्बाकू रखने का डब्बा आदि।

बस्तर हस्तशिल्प आदिवासी समाज की रचना धर्मिता का जीवंत प्रमाण है। आदिवासी शिल्प की लम्बी परम्परा कभी पत्थर पर कभी लकड़ी पर कभी धातुओं पर तो कभी मिट्टी व धागों पर उजागर हुआ। पत्थर, लकड़ी, मिट्टी साधन है। साध्य तो जीवन दिग्दर्शन कराना रहा है। जीवन के विभिन्न आयामों, संस्कृति के प्रतीक चिन्हों का सुन्दर चित्र बस्तर के शिल्प में मिलता है। बस्तर के सीधे -साधे, भोले भाले सपाट चेहरे वाले आदिवासी को देखकर यह कतई आभास नहीं होता कि उसके हाथों में वही जादू है जो उसे निर्जीव लकड़ी को सजीव बनाने में सामर्थ्यवान बनाता है।

बस्तर का आदिवासी जन्मना, कर्मना कलाकार है। किसी ने उसे पारम्परिक या व्यवस्थित शिक्षा नहीं दी है। देखकर, अनुकरण कर अभ्यास करते करते उसने पूर्वजों से चली आ रही पुरातन परम्परा को धरोहर के रूप में अपनी सन्तान को इस आशा प्रत्याशा के साथ सौंपता है कि परम्पार टूटे नहीं, लड़ियां बिखरे नहीं।

मुरिया कला के आकर्षक नमूने कंघियों और तम्बाखू रखने वाली लकड़ी की डिब्बियों में बहुतायत से देखा जा सकता है। कंघी के ऊपरी भाग पर आकृतियां बनाई जाती है, कंघी बेजोड़ हो और प्रेमिका का मन मोहित कर सके यह प्रयास रहता है। दो इंच से छः इंच चौड़े कंघे बनाये जाते हैं। इन कंघियों के प्रति गैर आदिवासी लोगों का रूझान इतना बढ़ता जा रहा है कि बस्तर के मेले मड़ईयों मे बिक्री के लिए इस प्रकार की कंघियां मुरियों द्वारा लायी जाती है और हाथों हाथ खरीद ली जाती है।

दैनिक वस्तुओं में तम्बाखू रखने की डिबिया भी प्रमुख है जिसे गोंड़ी भाषा में **गोटा** कहा जाता है। लगभग तीन इंच लम्बा और दो इंच गोला लकड़ी का टुकड़ा कटा जाता है और उसे धीरे धीरे सावधानीपूर्वक खुरेदकर तम्बाखू रखने के लिए जगह बनायी

जाती है। मोदे व कूम्ही की लकड़ी ही इस निमित्त चुनी जाती है क्योंकि दोनों लकड़ियां नरम होती है। आकर्षक गोटे पद व प्रतिष्ठा बढ़ाने में सहायक होते हैं। यौन अंगों का खुला प्रदर्शन कुछ गोटों में होता है, कुछ गोटे स्त्री के योनी के आकार के बनाये जाते हैं, योनी का चित्रण इसमें रहता है मगर इन्हें देखने पर यह जरा भी अश्लील नहीं लगते। गोटे दैनिक जीवन में उपयोगी व सदैव साथ रखने वाले होते हैं।

आदिवासी कला जीवन से जुड़ी कला है। कला केवल कला के लिए यहां कम ही है। जीवन से संबंधित व जीवन में व्यवहार की जाने वाली कृतियां ही मुरिया बनाते हैं। मुरिया कला में समय के साथ -साथ परिवर्तन आ रहा है। मुरिया कला का भूत व भविष्य दोनों सहेज कर रखने योग्य है।

## *संदर्भ सूची*


1. भारत संदर्भ, वर्ष 1988-89
2. सेंसस रिपोर्ट 1961
3. उपरोक्त ।
4. 1947 में बंबई से प्रकाशित इस ग्रंथ की द्वितीय आवृत्ति वन्या प्रकाशन भोपाल ने प्रकाशित की है।
5. दुबे के.सी. बस्तर के आदिवासी, लेख मध्यप्रदेश संदेश 1983 पृ. 3
6. सेंसस आफ इंडिया 1981 पार्ट 13 ए
7. दर्रो चमरू राम उम्र 76 वर्ष, ग्राम मंगता सालेमार परगना मांझी कोलर से प्राप्त जानकारी।
8. अग्रवाल डॉ. अविनाश बहादुर भारतीय चित्रकला का इतिहास पृ. 39
9. डॉ. बघेल, विजयकुमार, शोध प्रबंध बस्तर के नारायणपुर तहसील की मुरिया जनजाति का सामाजिक सांस्कृतिक इतिहास, पृ. 146
10. एल्विन वेरियर, आदिवासियों की कला, लेख आदिवासी, पृ 120
11. डॉ. बघेल विजय पूर्वोक्त पृ. 148
12. कला परम्परा लेख मेघदूत जून 1991 पृ.21
13. डॉ. ब्रजभूषण सिंह आदर्श लेख, बस्तर का शिल्प बस्तर स्मारिका 1988
14. दोसी किरिट, बस्तर का हस्तशिल्प, मध्यप्रदेश संदेश 21 अप्रैल 1983
15. दास रायकृष्ण भारतीय चित्रकला पृ. 2
16. शुक्ल नवल, मुरिया, पृ. 5



डॉ. विजय कुमार बघेल, प्रवक्ता इतिहास विभाग, शा. स्नातकोत्तर महाविद्यालय, जगदलपुर का सहयोग लेखक को इस लेख के लिखने में प्राप्त हुआ।

# अध्याय -22

# बस्तर- गोदना प्रथा

छत्तीसगढ़ के दक्षिण में स्थित बस्तर अंचल वर्तमान में तीन जिलों में विभक्त है। आदिवासी बहुल यह अंचल समाज शास्त्रियों एवं नृतत्व शास्त्रियों के आकर्षण का केन्द्र रहा है। **कलम व कैमरे के आकर्षण का केन्द्र** बस्तर के आदिवासी रहे हैं। आदिवासियों की अनेक विशेषताओं व पहचानों में गोदना प्रथा भी एक है। यह प्रथा उत्तर में नेपाल से लेकर बस्तर तक प्रचलित है। यह प्रथा शकों के प्रभाव की द्योतिका है।[1] अपने अध्ययन से श्रीमती शांति यदु ने लिखा है - गुदना की प्रथा सारे भारत वर्ष में तो नहीं किन्तु उत्तर पूर्वी सीमा पर अशकान, आसाम, मध्य भारत, दक्षिण भारत, अण्डमान निकोबार द्वीप समूह एवं छत्तीसगढ़ क्षेत्र की कतिपय जातियों, अनुसूचित जातियों जनजातियों में यह प्रथा आज भी प्रचलित है। बस्तर क्षेत्र की मुरिया, माड़िया, नारियां आज भी बड़ी ललक के साथ गुदना गुदवाती है।[2] भारत से बाहर भी आदिम प्रजातियां गोदना गुदवाती है मगर बस्तर की महिलाएं जिस चाव व ललक से गुदवाती है वह दर्शनीय है। भारतीय आदिवासी समाज की समग्र चर्चा करते हुए श्रीचन्द्र जैन ने लिखा है - आदिवासी लोक जीवन में यह परिपाटी उसी प्रकार व्याप्त है जिस भांति जल में शीतलता, आग में उष्णता एवं दूध में नवनीत समाहित है।

बस्तर में गोदना प्रथा मुख्यतः वहां की आदिवासी महिलाओं में लोकप्रिय है। आदिवासी पुरूष गोदना नहीं गुदवाते ऐसी बात नहीं है। बस्तर के माड़िया पुरूष अपने शरीर पर तीन से नौ के बीच छोटे छोटे डाट लाइन गुदवाते हैं। सौन्दर्य के प्रति महिलाओं का स्वाभाविक रूझान गोदना प्रथा की ओर उन्हें आकर्षित करती है। गोदना क्या है ? इसे स्पष्ट करते हुए बस्तर के **साहित्यकार लाला जगदलपुरी** ने लिखा है -एक ऐसी अलंकरण प्रणाली का नाम गोदना है जिसका संबंध सीधे लोक संस्कृति से जुड़ता है जहां त्वचा चित्रांकन का नाम गोदना है। वही त्वचा चित्र को भी गोदना कहते हैं। गोदना शब्द के कई अर्थ होते हैं चुभाना या गड़ाना, किसी कार्य के लिए बार बार जोर देना, चुभती या लगती बात कहना, ताना मारना, नील या कोयले के पानी में सुई को डुबाकर शरीर को विविध प्रकार से चिन्हित करना और गोदने से बनी आकृति।[3]

बस्तर में गोदना की लोकप्रियता ने उसे लोक गीत, लोक गाथा, कहावतों में स्थान दिलाया है। एक आदिवासी मां अपने बच्चे से कहती है तुम गुदना गुदा लो, बेटी द्वारा अनिच्छा प्रकट करने पर मां उसे समझाइश देती है बेटी तू गोदना गुदवा ले क्योंकि बाहरी आभूषण गहने तो मृत्यु के पश्चात इसी संसार में रह जाते हैं केवल शरीर पर गुदवाया गोदना ही मृत्यु के पश्चात भी औरत के साथ रहता है। यदि तुमने गोदना गुदवाने का कष्ट सहन कर लिया तो भावी जीवन में आने वाली पीड़ा, कष्ट, अनिष्ट को भी सहन कर

लोगी। जीवन संघर्ष में तुम्हें सफलता मिलेगी। गोदना के बारे में एक काव्यात्मक पहेली (धन्धा) द्रष्टव्य है -

आयले नदी पायले नदी, मश्ती कदम रूखसाले
सुवा गार पाड़ लिखे होटती के बड़े दुख [4]

लाला जगदलपुरी ने लिखा है - गोदना अलंकरण से लोक जीवन की अनेक धारणाएं जुड़ी हुई है। इसे एक ऐसा अलंकरण माना गया है जो शरीर के साथ ही जाता है। कांसा, तांबा, पीतल और सोना चांदी के जेवर तथा अन्य रत्नाभूषण साथ नहीं देते। गोदना को कोई चुरा नहीं सकता, छीन नहीं सकता, हिस्सों में मांग नहीं सकता, उतार नहीं सकता। इतने सस्ते में इतना स्थायी आभूषण गोदना के सिवाय संसार में और कोई दूसरा अलंकार हो ही नहीं सकता। [5] बस्तर के आदिवासियों पर उनकी परंपराओं पर कार्य करने वाले **डॉ. बेहार** ने लिखा है - बस्तर का आदिवासी समाज गोदना को स्वर्ग का पासपोर्ट मानता है। गोदना रहित महिला स्वर्ग जा ही नहीं सकती यह बद्ध मूल धारणा आदिवासी समाज में व्याप्त है। गोदना रहित महिला स्वर्ग नहीं जावेगी और उसका पुनः जन्म कन्या के रूप में ही होगा और सांसारिक चक्र में फंसना होगा। [6] बस्तर की मुरिया जनजाति पर कार्य करने वाले **श्री नवल शुक्ल** ने लिखा है - गुदना स्मृति चिन्ह और मधुर संबंध के प्रतीक में गुदवाया जाता है। गुदना धार्मिक और सामाजिक क्रिया है जिसके साथ सौन्दर्य की भावना भी जुड़ी हुई है। गुदने के संबंध में यह धारणा है कि रोग दुख कम होते हैं, शक्ति आती है, जनजाति देव वक्त पर रक्षा करते हैं, विपत्तियां नहीं आती। [7] बस्तर का एक बड़ा भाग अबूझमाड़ कहलाता है। वहां के निवासी अबूझमाड़ियों के बारे में 1908 ई. में लिखते हुए **पं. केदार नाथ ठाकुर** टीप देते हैं - अबूझमाड़िये जगह-जगह पर गोदने गोदाते हैं गोदना गुदवाना इनका रसम (रस्म) है। [8]

गोदना गोदने का कार्य ओझा की पत्नी करती है, इस संदर्भ में एक लोक कथा है - महाप्रभु ने ढोल देकर ओझा को कहा कि ढ़ोल पीट पीटकर गा बजाकर वह जीवन चलाए। एक दिन ओझा दिन भर घूमने के पश्चात शाम को घर आया तो देखा कि भोजन नहीं बना था। उसने पत्नी को खूब पीटा वह भी क्रूद्ध होकर रूठ गई और खाना पीना छोड़ दिया। 8-10 दिन बीत गए तो देवी ने अपने दूतों के द्वारा उसे बुलवाया और जंगल में सरई के वृक्ष से एक काला पदार्थ निकाल उसके गाल में गुदना बना दिया और कहा कि तुम भी इसी पद्धति से अन्य पहाड़ी जाति की स्त्रियों को गोदना। [9] गोदना सौन्दर्य वृद्धि का भी साधन माना जाता है।

गोदना को विभिन्न समाजों ने विभिन्न कारणों से अपनाया। श्री प्राण चड्ढा ने लिखा है विभिन्न आदिवासी समुदायों में गोदना चिनहारी (पहचान) का काम करता है वही ग्रामीण इसे पीड़ा निराकरण के मामले में एक्यूपंचर चिकित्सा पद्धति के तुल्य मानते

हैं।[10]

आदिवासी समाज में महिलाएं गोदना कब गुदवाती है ? इसके संबंध में अलग अलग जातियों की परंपराएं अलग अलग है। कुछ जाति की महिलाएं विवाह से पूर्व तो कुछ विवाह के पश्चात गोदना गुदवाती है। मुरिया समाज के बारे में लिखते श्री नवल शुक्ल वर्णन करते हैं - मुरिया बालिका को शादी के बाद के गुदने को ससुराल द्वारा प्रदत्त माना जाता है। गुदना स्मृति चिन्ह और मधुर संबंधों के प्रतीक के रूप में गुदवाया जाता है।[11]

बस्तर में निवास करने वाली हलबा जाति के बारे में **डॉ. तैलंग** ने लिखा है - पति के सहवास के बाद हलबा स्त्रियां अपने अंगों को विशेष कर शरीर के अंगों को पितागृह मे गुदवाती है।[12]

बस्तर का एक बहुत बड़ा भाग अबूझमाड़ के नाम से जाना जाता है - नाम के अनुरूप इस अंचल के बारे में पर्याप्त जानकारी नहीं मिलती अबूझमाड़ की आदिवासी स्त्रियां बहुत सुन्दर होती है। गोरा रंग आकर्षक नाक- नैन ये स्त्रियां कौतुहल की विषय रही है। **स्व. नर्मदा प्रसाद श्रीवास्तव** ने इनके बारे में जानकारी दी अबूझमाड़ के इलाके मे गोदना प्रथा के प्रारंभ के पीछे ऐतिहासिक तथ्य है। यह कहा जाता है कि वारंगल के काकतियों से चौदहवीं शताब्दी के दूसरे चतुर्थांश में पराजित चक्कोट (बस्तर का पूर्व नाम) के नाग राजाओं (जिनके 84 गढ़ थे 84 राजा थे ) में से अधिकांश लड़ते हुए मारे गए, पकड़े गए आत्म समर्पण किए मगर एक अच्छी संख्या ऐसे नाग राजाओं की थी जो लड़ने के पश्चात भाग खड़े हुए और अपने परिवार के साथ अबूझमाड़ के दुर्गम अंचल में जा बसे। काकतीय सैनिकों को जब यह ज्ञात हुआ कि शत्रु का परिवार अबूझमाड़ में छिपा हुआ है तब वे नाग परिवार की बहू -बेटियों को पकड़ -पकड़ कर भ्रष्ट करने लगे। इस संकट से बचने के लिए उन्होंने गोदने का सहारा लिया। चेहरे को स्थान -स्थान पर गोदकर विकृत बनाया गया इसके साथ ही सैनिकों की पकड़ से बचने के लिए वे स्थान परिवर्तन करने लगे। अबूछमाड़ में गोदना गोदने का कार्य स्वयं अबूझमाड़िये करते हैं।[13]

बस्तर में गोदना गोदने वाले बंजारा जाति के स्त्री पुरूष होते हैं ये **लमान, लमानीन** कहलाते हैं। गोदना गीत बस्तर के लोक जीवन में सम्मिलित हो चुका है। कोण्डागांव, चपका, दन्तेवाड़ा (बस्तर के प्रमुख कस्बे) में होली के अवसर पर फाग गाया जाता है। इसमें गोदना गीत गाया जाता है -

**धीरे गोदो गोदनारी लाल**
**नाजुक बहियां हमारे**
**पहिले गोदो सास ननद को**
**पीछे बहिया हमार**
**सीताजी को गोदो, राधाजी को गोदो**

**गोदो दन्तेश्वरी माई को।**

इस गोदना गीत के द्वारा बंजारा बंजारिन गोंदने का प्रचार प्रसार करती है। बस्तर में गोदना दो प्रमुख विधियों से गोदा जाता है। पहली विधि में शरीर के जिस भाग को गोदना होता है उस पर वांछित आकृति बनाई जाती है। फिर उस पर रसोई के बर्तन के नीचे लगी कालिख (केंवच) का लेप किया जाता है। इसके पश्चात भेलवा के तेल में सुई को डूबा डूबा कर चमड़ी में चुभाया जाता है। भेलवा के रस को अनेक जड़ी बूटी में पकाया जाता है उससे गोदना गोदा जाता है।

**सुख देहे ने भेलवा गोदा**

एक प्रचलित हलबी कहावत है। शरीर में कोई बीमारी नहीं है तो फिर भेलवा क्यों लगावें। उल्लेखनीय है कि भेलवा दवा के रूप में प्रयुक्त होता है। मांस पेशियों में दर्द, नस का चढ़ जाना जैसी परेशानियों से मनुष्यों के अलावा पशुओं को भी भेलवा से उपचारित किया जाता है।

गोदने की दूसरी विधि के अनुसार पहले शरीर के उन भागों में जाड़ा का तेल लेपा जाता है जहां आकृति गोदना होता है इसके पश्चात काजल में सुई को डूबा डूबा कर शरीर में चुभाकर वांछित आकृति बनायी जाती है। गुदना गुदे भाग पर गोबर का लेप 24 घण्टों के लिए लगाया जाता है। एंटी सैप्टिक गोबर को माना जाता है। आजकल बस्तर के मेले मड़ई में मशीन से गोदना गोदने वाले भी यह कार्य करते हैं।

आदिवासी बस्तर में गोदना एक पारंपरिक श्रृंगार के रूप में अपनी जड़े जमा चुका है। शरीर के विभिन्न हिस्सों पर गोदने से विभिन्न समस्याओं का निराकरण होता है। महिलाओं में पुरूषों के मुकाबले आठ गुना अधिक काम वासना होती है ऐसा शास्त्र बतलाते हैं। **गोदना इस काम वासना को शमित करती है** ऐसा भी बुज़ुर्गों का एक वर्ग बतलाता है।

शरीर के किस हिस्से पर कौन सी गोदना की आकृति बनेगी यह पारंपरिक है गोदना प्रक्रिया के जानकार विभिन्न इलाकों में है। वे ही अपने इलाके की स्त्रियों को कहां कौन सा गोदना गुदवाना है , बतलाते हैं, समझाते हैं। बस्तर का एक भाग कांकेर है अब यह पृथक जिला बना गया है। कांकेर में छत्तीसगढ़ का प्रभाव अधिक है। अतः वहां छत्तीसगढ़ - प्रकार का गोदना प्रचलन में है। कांकेर जिले में गोदना की जो आकृतियां प्रचलित है उनमें से प्रमुख मांछी (मक्खी) बांहा चघा (बांह चढ़ा), सूता (हंसुली), बिच्छी (बिच्छू), पैरी (पायल) आदि। बिच्छू अंगूठे के पास, बांहों पर बांहा चघा, कोहनी पर मक्खी, छाती पर सूता गुदवाया जाता है। आदिवासियों में गोदने के प्रचार प्रसार को देखते हुए **श्री रामअधीर ने लिखा** है - गोदना आदिवासी बालाओं की सांस्कृतिक पहचान की प्रतीक है।[14]

जिन आदिवासी स्त्रियों के शरीर पर गुदना नहीं होती उन्हें अच्छा नहीं माना जाता है। गोत्र चिन्ह गुदवाने के कारण उनके पूर्वजों की आत्मा कठिनाइयों के समय उन्हें सहारा देती है। [15] सरला सिंह की उपरोक्त टीप से लगता है बस्तर में गोदना का भविष्य सुरक्षित है।

## संदर्भ


1. डॉ. तैलंग भालचन्द्र - छत्तीसगढ़ी, हलबी, भतरी बोलियों का भाषा वैज्ञानिक अध्ययन पृ. 222
2. श्रीमती यदु शांति- मुरिया नारी, पृ.63
3. जगदलपुरी लाला - वन्य जीवन का सौन्दर्य गोदना विदेशों में फैशन बन गया - अमृत संदेश दैनिक, रायपुर 25.6.1989
4. बस्तर की आदिवासी बोली हल्बी में।
5. जगदलपुरी लाला - बस्तर इतिहास एवं संस्कृति पृ. 257
6. बेहार राम कुमार - आदिवासी बस्तर इतिहास एवं परंपराएं पृ. 73
7. शुक्ल नवल- मुरिया पृ. 36
8. ठाकुर केदारनाथ बस्तर भूषण, पृ. 55
9. वर्मा शकुन्तला, छत्तीसगढ़ लोक जीवन और लोक साहित्य का अध्ययन पृ. 45
10. प्राण चड्ढा, सौंदर्य की परंपराएं गोदना- नव भारत रायपुर, दिनांक 10 नवम्बर 1992 अंक।
11. नवल शुक्ल- पूर्वोक्त।
12. डॉ. तैलंग - पूर्वोक्त, पृ. 360
13. श्रीवास्तव नर्मदा प्रसाद भेंटवार्ता 8 अक्टूबर 1992 ई.
14. राम अधीर - बस्तर के आदिवासियों की उल्लास स्थली मड़ई, मध्यप्रदेश सन्देश 10 मार्च 1982
15. सरला सिंह - गोदना - म.प्र. सन्देश 25 अप्रेल 1983.


-00-

अध्याय– 23

## छत्तीसगढ़ की कला

# बस्तर का गौर नृत्य

छत्तीसगढ़ का एक बड़ा घटकर बस्तर है। बस्तर आदिवासी बहुल अंचल है। आदिवासियों की दुनिया एक निराली दुनिया होती है। इट ड्रीन्क एण्ड बी.हैप्पी खाओ–पीओ और मौज करो, अति उन्नत पाश्चात्य देशों का जीवन दर्शन है। आश्चर्य है ही जीवन दर्शन आदिवासियों का भी है। अभावों में ग्रस्त आदिवासी अपना दुख–दारिद्रय को भूलकर अपने उपरोक्त जीवन दर्शन के कारण मस्त रहता है।

छत्तीसगढ़ के दक्षिण में स्थित बस्तर अंचल आजादी से पूर्व एक राजा के द्वारा शासित था। वर्तमान में तीन जिला मुख्यालय इस क्षेत्र में स्थित है। लगभग 67% की आदिवासी जनसंख्या वाला यह भाग चर्चित अंचल रहा है। इन आदिवासियों में अधिसंख्या गोड़ जनजाति की है। गोड़ों की उपशाखा मुरिया और माड़िया लोगों की संख्या बस्तर में अधिक है. इसी कारण बस्तर के किसी भी आदिवासी के लिए शहरी लोग मुरिया माड़िया है, ऐसा कह देते हैं।

छत्तीसगढ़ की कलाओं पर चर्चा तब तक अधूरी रहती है,जब तक बस्तर की कलाओं की चर्चा न हो जाये। कला मर्मज्ञ वात्स्यायन ने कलाओं की कुल संख्या 64 बतलाई है, इन कलाओं में नृत्य कला का भी उल्लेख है। श्रीमती कमला देवी चटोपाध्याय ने लिखा है – ''जन्म से मृत्यु तक के सभी सामाजिकत अवसरों पर नृत्य का आयोजन किया जाता है। ऋतु परिवर्तन, धार्मिक त्यौहारों, विवाह, आखेट आदि में शायद ही नृत्य के बिना काम चलता हो।'' बस्तर के नृत्य राष्ट्रीय पर्वो के अवसर पर भी अन्य राष्ट्रीय –नृत्यों के साथ सम्मिलित किए जाते है। गणतंत्र दिवस हो या स्वतंत्रता दिवस या किसी कला का राष्ट्रीय समागम हो, सांस्कृतिक कार्यक्रमों में बस्तर के नृत्य सम्मिलित रहते है। अंतरराष्ट्रीय मेलों के उद्घाटन– समापन अवसरों पर भी ये नृत्य आयोजित किए जाते है।

जहाँ तक बस्तर के आदिवासी समाज का प्रश्न है, यह उसके जीवन का अंग है, भोजन, पानी, हवा की तरह नृत्य भी उनके लिएं अनिवार्य है ''**जो जाति नाचती नहीं वह मर जाती है**, जो नाचती है, वह मरती नहीं है यह आदिवासी मान्यता है। बस्तर के नृत्यों की अनेक विशेषताओं में से एक उसकी सामूहिकता है। एकता के धागों को मजबूत करने का नृत्य एक उपक्रम है। नृत्य पारंपरिक है, जाति विशेष – नृत्य विशेष को अपनाए हुए है।

बस्तर की माड़िया जनजाति अपनी अनेक विशेषताओं के कारण चर्चित है। गोड़ जनजाति की यह उपशाखा घनघोर पहाड़ी जंगल में बसी है। अपनी बसाहट के कारण ही ये माड़िया कहलाए। घनघोर पहाड़ी जंगली स्थान को माड़ कहा जाता है। **माड़ में रहने वाला माड़िया कहलाया**। गोड़ों पर अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से बस्तर के प्रशासक डब्ल्यू व्ही ग्रिग्सन ने माड़ियों की एक शाखा को बाइसन हार्न माड़िया नाम दिया। बाइसन का अर्थ गौर नामक जंगली जानवर है, इस जानवर के सींग को ये माड़िया अपने हेड ड्रेस में सजाए रखते है, यह हेड ड्रेस नृत्य के समय सिर पर रखा होता है। इस हेड ड्रेस के कारण ही माड़िया के नृत्य का नाम गौर नृत्य पड़ गया है। माड़िया जनजाति मुख्य रूप से दक्षिण बस्तर में निवास करती है। आज भी दक्षिण बस्तर अपने घने वनों के कारण चर्चित है। जगदलपुर, दंतेवाड़ा, बीजापुर तथा कोन्टा तहसीलों में ये माड़िया निवास करते है। बाइसन हार्न – माड़िया नृत्य को सुप्रसिद्ध नृतत्वशास्त्री वेरियर एल्विन ने **भारत का सुन्दरतम नृत्य लिखा** है। माड़िया का हेड ड्रेस कीमती होता है। माड़िया आदिवासी अपने पुत्र के लिए उत्ताधिकार में गौर नृत्य का हेड ड्रेस छोड़ना पसंद करंता है। पुत्र के न होने पर हेडड्रेस पर भतीजे का अधिकार होता है। तीर धनुष वाद्ययंत्र ड्रम के साथ हेड ड्रेस भी माड़िया समाज की बहुमूल्य वस्तुएं हैं, जो उत्ताराधिकार में सौंपी जाती है।

गौर या गवर नृत्य बस्तर के माड़िया आदिवासियों का प्रमुख नृत्य है। इस लोक नृत्य को करते समय पुरूष नर्तक अपने सिर पर गौर का सींग धारण किए रहते हैं, इसी कारण यह गौर –नृत्य कहलाता है। गौर नृत्य में प्रायः अविवाहित युवक – युवतियाँ भाग लेती हैं, पुरूष नर्तक पगड़ी में गौर सींग सजाए रहते है। गौर को माड़िया अपनी भाषा में **माओ या पेटमा** कहते है। इसके सींग को बांस की खपचियों में फंसा कर, आड़े–तिरछे करके बांधा जाता है, इसकी सुन्दरता में अभिवृद्धि

करने के उद्देश्य से कौड़ियों की लटें लटकायी जाती है। यह हेड ड्रेस माड़िया की ऐसी संपत्ति है जो उसे प्राणों से भी अधिक प्रिय है। साल्हेपार–पोटानार के नर्तक दल के सदस्य ने प्रस्तुत पंक्तियों के लेखक को बतलाया कि इस हेड ड्रेस की मूल्य हजारों रूपये में है। माड़िया हजार से अधिक रूपयों की कल्पना नहीं करता। गौर नृत्य मुख्यतः विवाह के अवसर पर आयोजित होने वाला नृत्य है। अब तो बस्तर के नगरों में धनिक वर्ग भी विवाह के अवसर पर मेहमानों के मनोरंजन के लिए गौर नृत्य आयोजित कराने लगा है। नर्तक दल 200 से 1000 रूपये शुल्क लेता है, उनके भोजन की व्यवस्था निमंत्रण देने वाला करता है। इन्हें गांव से शहर तक लाने के लिए वाहन व्यवस्था नहीं की जाती, ये पैदल ही अपने वाद्ययंत्रो के साथ नगर आते है और वापस लौटते हैं। लगभग 20 युवक – युवतियों का समूह (नर्तक, नर्तकी, वादक) 15–20 कि.मी. की पैदल यात्रा कर नगर पहुंचते है, रात भर नाचते है और सबेरे वापसी यात्रा पर निकल पड़ते हैं। ''शादी किसी की हो – अपना दिल गाता है, नाचता है – यह दर्शनीय भाव माड़ियों का रहता है।

गौर सींग को पहले पोला किया जाता हैं, जिससे उसका वजन कम हो। कई दिनों के मेहनत में यह कार्य होता है। मजबूत गौर सींग को खोखला करना श्रमसाध्य समय लगने वाला कार्य हैं, जो केवल माड़ियों के बल बूते का कार्य है। सींग दुर्लभ है जिसे यह नहीं मिलता, वह जंगली भैंसे के सींग से काम चलाता है। मोर का पंख लगाकर गौर सींग को सजाया जाता है। हेड ड्रेस बस्तर की पहचान बन गई है। सींग वाला **माड़िया – नृत्य जोशीले – नृत्यों की सूची में आता है**। दस पन्द्रह नर्तकों का समूह सभी के सिरों पर गौर सींग का हेड ड्रेस और लगभग उतनी ही संख्या में माड़िया युवतियाँ। युवतियों के हाथों में गुजा रहता है। यह गुजा लोहे का छड़ हैं, जिसके ऊपरी भाग पर फली की कृति की लोहे की फलियाँ गुंथी होती है – सात आठ लौह फलियाँ, गुजा के जमीन पर पटकने से मधुर –स्वर लहरियाँ फैलाती है। पुरूष नर्तक मांदर (ड्रम) लटकाए रहते हैं, जिस पर नृत्य के साथ – साथ थाप भी करते हैं। लगभग 90 से.मी. लंबाई और 100 से.मी. गोलाई वाला यह वजनी मांदर गले पर लटका कर नृत्य करना बलिष्ठ माड़िया युवकों के लिए ही संभव है।

आदिवासी माड़ियों का यह गौर नृत्य एक ओर तो आमोद प्रमोद का साधन है तो दूसरी ओर पौरूष के संवर्धन का नैसर्गिक माध्यम भी है। एक अच्छा नर्तक, सहज ही नर्तकी का मन मोह लेता

है।

नृत्य के समय गौर सींग क्यों धारण करते है ? यह प्रश्न सहज रूप से उठता है बस्तर की अन्य जनजातियों ऐसा नहीं करती। इस संबंध में एक दंत कथा है। एक समय की बात है माड़िया समूह में शिकार करने निकले राह पर गौरों के एक समूह से सामना हो गया माड़िया ने अपने अस्त्र-शस्त्रों से एक-एक कर सभी गौर मार डाले। एक मादा गौर किसी तरह से बच निकलने में सफल रही। मादा गौरका पूरा परिवार नष्ट हो गया था। **उसने शाप दिया कि माड़ियों के नाश का कारण गौर बनेंगे**। गौरों के दूसरे समूह को जब ज्ञात हुआ कि माड़ियों ने बड़े पैमाने पर गौरं को मार डाला है, तब वे क्रोधित हुए बदलें की आग ने आक्रमण की पृष्ठभूमि बनाई। माड़िया गांव पर सैकड़ों गौरों ने आक्रमण कर दिया और सींगो और पैरों से सैकड़ों माड़िया को मार डाला। एक गर्भवती माड़िया युवती किसी तरह से जान बचाकर भागने में सफल रही। उसने समय पर माड़िया बच्चे को जन्म दिया। बच्चा जब बड़ा हुआ, तब मां ने उसे माड़िया के समूल विनाश की कहानी सुनाई और चेतावनी दी कि वह गौर का शिकार न करें। युवक माड़िये ने गौरों से संबंध सुधारने का निश्चय किया। उपक्रम प्रारंभ किया। उसने **गौर सींग धारण कर के यह दर्शाना प्रारभ किया कि वह गौरों का सगा है**। गौरों ने भी इस युवक को नहीं सताया। उसके दशा देख कर के अन्य माड़ियों ने भी गौर का सींग धारण करके गौरों के प्रति मैत्री भाव को दर्शाते हुए मैत्री संबंध सूचक व्यवहार किया।

सींग पहनकर नाचने के संबंध में एक दूसरी दंत कथा प्रकार है - एक बार भगवान शंकर अपने दल बल के साथ बस्तर अंचल में आए। सभी के सिर पर सींग बंधा हुआ था। माड़ियों का एक समूह मैदान पर नाच रहा था। शंकर भगवान का दल वहाँ पहुंचा, मगर किसी का ध्यान उस ओर आकृष्ट नहीं हुआ, वे मस्त नाचते रहे। शंकर भी अपने समूह के साथ नृत्य में सम्मिलित हो गए। नाच समाप्त होने पर शंकर भगवान ने मुखिया - माड़िया से वरदान मांगने को कहा। माड़ियों के लिए सिर पर सींग नया दृश्य था। मुखिया ने साथियों से सलाह कर भगवान से सींग मांगा। शंकर भगवान ने अपने सिर से सींग उतारा और माड़िया - मुखिया को दे दिया।शंकर के साथियों ने भी यही किया और वहाँ से चल दिए। माड़ियों ने इसके पश्चात से नाचने के समय सिर पर सींग धारण करना प्रारंभ

किया। यह दंत कथा यद्यपि सींग लगाकर नाचने की प्रथा को बहुत पुराना बतलाता है, मगर अधिकांशतः पहली दंत कथा को सही मानते है। सच्चाई जो हो, गौर सींग पहनंकर नाचना माड़ियों की नियति बन गईहै। शेष आदिवासी – नृत्यों से पार्थक्य गौर – सिंग पहनकर नाचा जाने वाला माड़ियों नृत्य है।

गौर –शिकार वाली घटना सही प्रतीत होती है। नृत्य के दौरान माड़िया युवक अनेक जंगली जानवरों के चालों की नकल उतारते है। **गौर की नकल दर्शनीय होताहै। गौर के चलने का ढंग, आक्रमण कीमुद्रा, प्यार की मुद्रा अनेक भाव मुद्राओं को वे प्रस्तुत करते हैं।** नृत्य के माध्यम से ऐसे भाव प्रस्तुत करना कोई माड़ियों से सीखे।

माड़ियों का गौर नृत्य पीढ़ियों से रक्त संचरित होते आया है।छोटे छोटे बच्चे अपने बुजुर्गो को नाचते देखते है और उनकी नकल उतारते है। नृत्य प्रशिक्षण कीपृथक कोई व्यवस्था नहीं होती।

गौर नृत्य में पुरुष की आकर्षण का केन्द्र होताहै – ऐसी बात नहीं है। माड़िया युवतियाँ भी इस नृत्य के लिए सजती है, यह साज सज्जा दर्शनीय होती है। सिर पर पीतल की पट्टी लगभग 4 इंचचौड़ी जो कुडूड कहलाती है – पहनती है। स्थानीय घड़वा इसे बनाते है ऐसा कहा जाता है कि माड़िये जब धनी थे तब सोने का कुडूड पहनते थे – ऐसा स्व. सुन्दरलाल त्रिपाठी की मान्यता है। नाक में नथ, कान में कर्णफूल, कंठी माला, सूता, हाथों में अंगूठियाँ (महेल) गले में रूपमा–माला पहनती है।

नारायणपुर के अंतरराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त मंडई में माड़िया युवक – युवतियों को चार पांच सौ की संख्या में एक साथ नाचते देखना अनिर्वचनीय आनंद देने वाला होता है।

पौरूष नृत्यों की श्रृंखला का गौर नृत्य गौर के प्रति सम्मान प्रकट करने वाला, मैत्री भाव बढ़ाने के उद्देश्य से प्रारंभ कियागया। गौर नृत्य अपलक, अथक देखा जाने वाला नृत्य है। गौर, गौर सींग, गौर नृत्य वस्तर के प्रतीक है।

# अध्याय –24

## छत्तीसगढ़ का प्रथम महाविद्यालय

# छत्तीसगढ़ कॉलेज

छत्तीसगढ़ अंचल के निवासियों को अपनी जिन संस्थाओं से भावनात्मक जुड़ाव है उनमें से एक है छत्तीसगढ़ कालेज। क्षेत्र का लाड़ला, दुलारा सर्वप्रथम महाविद्यालय अनेक उतार चढ़ाव से गुजरता आज मिनी युनिवर्सिटी के रूप में रायपुर की शान बना खड़ा है। बैरन बाजार स्थित यह कालेज अंचल के लोगों के लिए गौरव का विषय है। तीन पीढ़ियाँ आज गर्व से कहती है कि उन्होंने उच्च शिक्षा छत्तीसगढ़ कालेज से प्राप्त की है। 1938 में स्थापित यह कालेज प्रारंभ से ही जन आकांक्षा को मूर्त रूप देने वाली संस्था के रूप में जाना जाता है। इस महाविद्यालय की स्थापना में जे. योगानंदम की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। दक्षिण भारतीय., विद्वान योगानंदम जी जिन्होंने जीवन का प्रारंभ वकालत से कियाथा, शिक्षा जगत के एक जाबांज योद्धा के रूप में जाने जाते थे । इस अंचल के इतिहास में छत्तीसगढ़ कालेज और योगानंदम जी अपने लिए महत्वपूर्ण स्थान बना चुके है। विश्वविद्यालयों में जिस प्रकार बनारस हिन्दु विश्वविद्यालय से उत्तर भारत भावनात्मक रूप से जुड़ा है उसी प्रकार कालेजों मे छत्तीसगढ़ कालेज ऐसा है जिसके छात्र संपूर्ण भारत में विभिन्नपदों पर कार्य कर अपनी योग्यता की छाप छोड़ गए है।

कालेज की स्थापना के लिए धन संग्रह की समस्या थी। छत्तीसगढ़ शिक्षा समिति को **दाऊ कामता प्रसाद** के रूप में ऐसे दानदाता मिले जो भूतों न भविष्यत वाले थे। ऐसा दानवीर चिराग लेकर ढूंढने से भी दूसरा नहीं मिल सकता। दाऊ कामता प्रसाद ने लगभग एक लाख की राशि दान के रूप में दी। 1938 में एक लाख रूपये की राशि आज की गणना में एक करोड़ के बराबर ठहरती है। इतनी बड़ी राशि दान देने वाले दाऊ कामता प्रसाद ने दो शर्ते रखी थी – पहली शर्त थी उनका नाम महाविद्यालय के साथ न जोड़ा जाये, दाऊ कामता प्रसाद कालेज नामकरण न हो, बल्कि छत्तीसगढ़ कालेज हो, दूसरी शर्त थी – उनके परिवार के किसी भी व्यक्ति को महाविद्यालय के किसी पद पर नियुक्ति न दी जाये। सहसा विश्वास नहीं होता कि कलियुग में ऐसा दानवीर उत्पन्न होगा जो परंपरागत गुप्तदान को मौखिक नहीं यथार्थ में उतारने वाला हो। दाऊ कामता प्रसाद के पवित्र दान

ने छत्तीसगढ़ कालेज की ऐसी आधारशिला रखी जो लाख प्रतिकूल परिस्थितियाँ आने के बावजूद नेस्तनाबूद नहीं हुई।

1938 के पहले इस विशाल अंचल में उच्च शिक्षा को लिए कोई कालेज नहीं था, पढ़ने को उत्सुक छात्र नागपुर जाना पसंद करते थे। रायपुर के समाज सेवियों, बुद्धिजीवियों को यह कमी खली। आपस में विचार विमर्श कर एक समिति बनाई गई जिसे कालेज स्थापना क लिए कार्य करना था। लोगो को प्रेरणा देने वाली साफ सुथरी छबि वाले, नगर पालिका, रायपुर के तत्कालिक अध्यक्ष ठाकुर प्यारेलाल सिंह को शिक्षा समिति का अध्यक्ष तथा श्री योगानंदम की सचिव बनाया गया। अन्य सदस्य थे सर्वश्री रामदयाल तिवारी, राम नारायण शुक्ला, सखाराम दुबे। कालेज रायपुर नहीं वरन् छत्तीसगढ़ के लिए खुलेगा इस भावना को लेकर शिक्षा समिति का नामकरण किय ।गया छत्तीसगढ़ शिक्षासमिति जिसका मुख्यालय रायपुर था ।•इस कालेज के प्रथम छात्र स्वराज्यप्रसाद त्रिवेदी ने कहा था – मैने 1938 में छत्तीसगढ़ कालेज में प्रवेश किया। महाविद्यालय की तब स्थापना ही हुई थी। उन दिनों लोगों को सहसा विश्वास नहीं होता था कि रायपुर जैसे छोटे शहर में भी महाविद्यालय प्रारंभ हो सकता है। प्रदेश की राजनीति के भीष्म पितामह पं. शुक्ल भी कालेज की सफलता के बारे में पूर्णतः आश्वस्त नहीं थे। लेकिन संकल्प के धनी योगानंदम जी ने यह कठिन कार्यपूर्ण कर दिया।

1938 में छत्तीसगढ़ कालेज की स्थापना से एक उद्देश्य कीपूर्ति हो गई पर अभी इसे प्रतिष्ठा व सम्मान प्राप्त करना था। योगानंदम जी ने इसके लिए भी प्रयास किये और चुन–चनकर विषय विशेषज्ञों को कालेज में प्रोफेसर के रूप में नियुक्त किया। कालेज के प्रोफेसर बनने के लिए एक मुख्य शर्त थी कि कोट टाई के स्था।न पर राष्ट्रीय वेशभूषा धारण करनी होगी, जिसे सारे प्रोफेसर स्वीकार करते थे।नारी शिक्षा के क्षेत्र में भी यह कालेज नींव का पत्थर सिद्ध हुआ। 1938 –39 के बैच मेंही दो छात्राओं प्रीतिलता बोस और सत्यवती वर्मा ने महाविद्यालय में प्रवेश लेकर नारी उच्च शिक्षा का मार्ग प्रशस्त किया।

कालेज के लिए भवन की समस्या थी। वर्तमान शिक्षा महाविद्यालय के पास स्थित एक मकान मिला जिसमें स्थान की कमी के कारण बांस के टट्टों को घेरकर कक्षा बनाईगई। इसीलिए

मजाक में लोग उसे टट्टा कालेज भी कहते थे। टट्टा कालेज में पढ़ने पढ़ाने वालों के मनोबल ऊंचे थे। उन्हें अपने कालेज में पुराने गुरूकुल का आभास होता था। सहपाठियों के साथ बंधु जैसा व्यवहार होता था। कालेज शिक्षा के साथ -साथ चरित्र निर्माण का भी योगदान था। पुराने छात्र आज भी स्वीकारते है कि उन्होंने अपने गुरूओं से बहुत कुछ सीखा, चारित्रिक ऊंचाई की प्राप्ति में महाविद्यालयीन शिक्षा सहायक होती थी। कालेज के भूतपूर्व छात्र छत्तीसगढ़ के शीर्षस्थ साहित्यकार श्री हरि ठाकुर ने लिखा है - ''मुझे यह स्वीकर करने में जरा भी संकोच नहीं कि मेरे व्यक्तित्व के निर्माण में छत्तीसगढ़ कालेज की महत्वपूर्ण भूमिका थी।

छत्तीसगढ़ कालेज के गौरवशाली इतिहास में वहां से निकले छात्र प्रायः सभी क्षेत्रों में नाम कमाने वाले हुए। प्रशासनिक अधिकारी, प्रोफेसर, संगीतकार, संपादक, न्यायधीश, अधिवक्ता, साहित्यकार, समाजसेवी, व्यवसाय जो जिस क्षेत्र में गया उसमे नाम कमाया औरजीवन भर अपनी मातृ संस्था छत्तीसगढ़ कालेज को नही भूले। सर्वश्र जयनारायण पांडे, रणवीर सिंह शास्त्री, श्यामलाल गुप्ता, जीवनलाल साव, मधुकर, डा. गुलाब सिंह, रमेश नैय्यर, गोविंदलाल वोरा, प्रो. अनिल झा, बी. मोविनुद्दीन, मिर्जा मसूद, विभु कुमार खरे, अरूण सेन, अनीता सेन, स्वराज प्रसाद द्विवेदी, डा. श्याम चरण दुबे, सुरेशचन्द्र देशलहरा, जे.डी. झा, ठाकुर रामकृष्ण सिंह, ईश्वरसिंह परिहार, सुधीर मुखर्जी, दशरथ चौबे, हरिप्रसाद अवधिया, शारदा प्रसाद तिवारी, भूपेन्द्रनाथ मित्र, नरसिंह प्रधान, डा. धनंजय वर्मा, बाबूलाल शुक्ला, लक्ष्मण सतपंथी, ठा. दरबार सिंह, मेघनाथ कन्नौजे, ज्योतिदेव बेहार, विश्वेन्द्र नाथ ठाकुर, जवाहर मिश्रा, डा. प्रभुलाल मिश्र, डा. नरेन्द्र देव वर्मा, दानेश्वर शर्मा ने इस महाविद्यालय में अध्ययन किया और समाज व प्रशासन में नाम कमाया।

महाविद्यालय में पढ़ने की ललक दूर - दूर से छात्रों को रायपुर लें आती थी। मेरे बड़े पिता जी श्री ज्योति देव बेहार 1938 के प्रथम बैच के छात्र थे। सारंगढ़ से 40 कि.मी. पैदल चलकर वे सरायपाली पहुंचते थे और फिर वहां से बस द्वारा रायपुर। शिक्षा की ललक उन्हें रायपुर खींच लाई थी। छत्तीसगढ़ कालेज में बी.ए. औरबी.काम. की कक्षायें चलती थीं। स्नातकोत्तर कक्षाओं में 1950 के लगभग राजनीति शास्त्र में अध्यापन प्रारंभ हुआ। 1952 के लगभग दुर्गा महाविद्यालय में

न्यू आर्टस कालेज के नाम से शैक्षणिक जगत में कदम रखा यहाँ के प्राचार्या होने का श्रेय भी छत्तीसगढ़ कालेज के प्रो. रामचन्द्रन को प्राप्त हुआ। दुर्गाकालेज की स्थापना के बाद प्रतिस्पर्धा के दौर पर दोनों कालेज चलते रहे। संयोग से दोनों के प्राचार्य दक्षिण भारतीय थे मगर योगानंदम जी का हिन्दी ज्ञान उन्हें लोकप्रिय बनाने में सहायक रहा। योगानंदम जी के कड़े अनुशासन में रहने में असमर्थ प्रोफेसरों के लिए विकल्प के रूप में दुर्गा कालेज था।

कुछ समय के लिए छत्तीसगढ़ कालेज में लॉ की कक्षायें भी चलीं जो बाद में बंद हो गया। श्री हरि ठाकुर और उनके बैच के लोग वही के उपज थे। प्रतिस्पर्धा का दौर कुछ ऐसा चला कि राजनैतिक सहायता न मिलने के कारण छत्तीसगढ़ कालेज के बुरे दिन आए। छात्रों की संख्या घटते – घटते इतनी कम हो गई कि कालेज को बंद करने की नौबत आ गई। योगानंदम जी तब तक अलग हो गये थे। प्राचार्य के रूप में श्री वी.सी. श्रीवास्तव थे जी अब स्वर्गीय हो गये है राजनीति शास्त्र के माने हुए प्रोफेसर थे। छत्तीसगढ़ कालेज़ के भूतपूर्व छात्रों को जब कालेज की दुर्दशा का ज्ञात हुआतो उन्होने कमर कसी और किसी भी हालत में कालेज को बंद नहीं होने देने का संकल्प लिया। अमृत संदेश के संपादक श्री गोविंदलाल वोरा के नेतृत्व में भू. पू. छात्रों का एक समूह सामने आया। कालेज की पुनजीवित करने के लिए शारदा चरण तिवारी की अध्यक्षता में एक समिति बनीं। इस कार्य में मधुकर खेर, बरकत अली फरिश्ता, संतोषचन्द्र जैन, उल्लेखनीय रहा। दानपत्र के माध्यम से लाटरी निकाली गई। इससे धनसंग्रह हआ और कालेज की गाड़ी चल निकली।

इस कालेज को प्राचार्य के रूप में संस्थापक जे.योगानंदम, एम.के. केलकर, बी.सी. श्रीवास्तव, एस.सी. देशलहरा, सरयूकांत झा जैसे विद्वान अशासकीय महाविद्यालय के प्राचार्य के रूप में सेवा देने वाले रहे। 1 अक्टूबर 1982 को छत्तीसगढ़ कालेज शासनाधीन हुआ। कालेज के नाम के आगे शासकीय शब्द जुड़ गया। सरयूकांत झा को शासकीय छत्तीसगढ़ कालेज के प्रथम प्राचार्य होने का श्रेय मिला। वे श्री योगानंदम के पश्चात सर्वाधिक वर्षो तक प्राचार्य रहे। छात्र, प्राध्यापक तथा प्राचार्य तीनों रूप में वे छत्तीसगढ़ कालेज से जुड़े रहे। श्री बाबूलाल शुक्ला को इस बात का श्रेय जाता है कि उन्होंने महाविद्यालय के उद्ण्ड छात्रों को अनुशासन में लाया। श्रीमती गीता तिवारी एकमात्र महिला प्राचार्य रही जिनका कार्यकाल बहुत कम, लगभग पौने दो वर्ष का

रहा।

14,12,95 को प्रदेश शासन उच्च शिक्षा विभाग ने छत्तीसगढ़ कालेज को स्नातकोत्तर कालेज का दर्जा दिया। स्नातकोत्तर महाविद्यालय होने के कारण अब कालेज को अधिक अनुदान मिलने लगा है। 1995-96 से इस कालेज ने स्वशासी का दर्जा प्राप्त किया जिसके प्रभारी के रूप में प्रो. राम कुमार बेहार ने महाविद्यालय को विश्वविद्यालय से स्वशासी दर्जा दिलाने तथा यू.जी.सी. से विशेष अनुदान दिलाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। स्वशासी के परीक्षा नियंत्रक प्रो. गुलाब सिंह ने परीक्षा की गोपनीयता व विश्वसनीयता को बढ़ाया।

छत्तीसगढ़ कालेज में लगभग 2500 छात्र/छात्रायें अध्ययनरत है। स्नातकोत्तर स्तर पर अंग्रेजी, हिन्दी, राजनीति शास्त्र, समाज शास्त्र, अर्थशास्त्र, भूगोल, दर्शन शास्त्र, लोक प्रशासन, गणित, एम.काम. प्रा. भारतीय इतिहास पुरातत्व व संस्कृति विषयों का अध्ययन होता है। विधि में मास्टर डिग्री एल-एल. एम. की पढ़ाई के लिए होती है। पत्र कारिता की उपाधि के लिए वर्षो तक यह एकमात्र महाविद्यालय था। भविष्य में यह कालेज और अधिक विकसित होगा इसमें दो राय नहीं है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, नई दिल्ली ने विशेष अनुदान के लिए इस कालेज के इतिहास, हिन्दी, भूगोल, गणित विभाग को चुना है। इन विषयों मे उच्च अकादमिक चरित्र वाले प्रोफेसर के कारण इन विभागों का विशेष अनुदान मिल रहा है।

छत्तीसगढ़ कालेज के प्रांगण में जे. योगनंदन जी की प्रतिमा का अनावरण 5.9.96 को हुआ। ये. योगानंदम के प्रति श्रद्धांजलि का यह एक पुष्प था। छत्तीसगढ़ कालेज का गौरवशाली अतीत रहा है। जनभागीदारी समिति के अध्यक्ष के रूप में श्री सत्यनारायण शर्मा, शिक्षा मंत्री छ.ग. शासन का संरक्षण व सहयोग महाविद्यालय के विकास में सहायक रहा है।

अध्याय -25

# अपने समय के समर्थ समालोचक पं. रामदयाल तिवारी

छत्तीसगढ़ के गौरव पं. रामदयाल तिवारी समर्थ समालोचक के रूप में ख्यात रहे हैं, गुरुओं में सर्थगुरू- शिवाजी के गुरु रामदास थे। उसी प्रकार समालोचकों के समूह में केवल तिवारी जी को ''समर्थ'' की उपाधि प्राप्त थी 23 जुलाई 1890 ई. को रायपुर में जन्में सरयूपारी ब्राह्मण पे. रामदयाल तिवारी के पिता का नाम पं. रामबगस तिवारी था। राम बगस शिक्षक थे। अतः आर्थिक दृष्टि से कमजोर थे , 12 रूपये मासिक वेतन पर घर का खर्च बड़ी कठनाई से चला पाते थे पं. रामदयाल जी का बचपन कष्टों में बीता घर में पढ़ने के लिये लाईट की व्यवस्था न होने पर वे सड़क के किनारे बिजली खम्बे के नीचे बैठकर पढ़ते थे। प्रतिकूल परिस्थितियों से जूझते रामदयाल ने हिम्मत नहीं हारी. सोलह वर्ष की अवस्था में उन्होंने मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण की। बी.ए. की पढ़ाई की कोई व्यवस्था छत्तीसगढ़ में नहीं थी, रामदयाल जी उच्च शिक्षा के लिये इलाहाबाद गये और 1911 में बी.ए. तथा 1914 में एल-एल.बी. की परीक्षा उत्तीर्ण की। रायपुर क्या पूरे छत्तीसगढ़ से विधि स्नातक होने वाले प्रारंभिक समूह के छात्र थे। शिक्षा की दृष्टि से तिवारी जी उच्च शिक्षित थे।

वकालत की परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् उन्होंने रायपुर में वकालत प्रारंभ की मगर वकालत कर नहीं सके। वकालत को वे एक नोबल प्रोफेशन मानते थे मगर यथार्थ में जब व्यवसायिक प्रतिद्वंद्विता से पाला पड़ा तो वे निराश हुये. आदर्शोन्मुख व्यक्ति के लिये तब भी वकालत करना कठिन था, केवल कुछ माह की वकालत करने के पश्चात् उन्होंने कोर्ट से मुंह मोड़ लिया।

पं. रामदयाल तिवारी बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे. विधि स्नातक तो वे थे ही रचना धर्मिता भी उनमें थी. अध्ययन-मनन लेखन उनका व्यक्तित्व था। राजनीति, साहित्य, दर्शन, चित्रकारी, बांसुरी वादन एक ही व्यक्ति के अनेक कार्य क्षेत्र थे। निर्भिकता कूटकूट कर भरी थी। अतः अपनी बात दमदारी से रखते थे। अंतरात्मा की आवाज पर निर्भिक समालोचना ने ही उन्हें समर्थ

समालोचक बनाया।

द्विवेदी युगीन साहित्यकारों में श्री मैथिली शरण गुप्त का महत्वपूर्ण स्थान था. उनकी कृति यशोधरा, साकेत पर समीक्षात्मक लेख लिखने का साहस बहुत कम जुटा पाते थे . पं. रामदयाल तिवारी 'यशोधरा' पर समीक्षात्मक लेख क्या लिखा हिन्दी जगत में तहलका मच गया। मौलिक समीक्षा के रूप में इसे विद्वत समाज का आदर मिला। सूक्ष्म से सूक्ष्म अध्ययन कर कृति के सभी पक्षों को अनावृत्त कर देने वाली रचना को ही श्रेष्ठ समालोचक तिवारी जी मानते थे. साकेत की समीक्षा ने उन्हें समालोचक के रूप में प्रसिद्धि दिलाई।

उर्दू के माहन शायर उमर खैय्याम की रूवाइयां इन दिनों ख्याति प्राप्त थी. रूबाईयों की समालोचना एक कठिन कार्य माना जाता था। तिवारी जी ने रूबाइयों की समालोचना कर दी। उन दिनों माधूरी बहु प्रसारित पत्रिका थी। उसी में समालोचना छपी। इस समालोचना को पढ़कर उपन्यास सम्राट मंशी प्रेमचंद्र बहुत प्रभावित हुये। पं. रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी के दिग्गज समालोचक थे। वे यशोधरा की समालोचना से प्रभावित हुये और उसकी भूरि–भूरि प्रशंसा की।

पं. रामदयाल तिवारी हिन्दी, अंग्रेजी व उर्दू तीनों भाषाओं के ज्ञाता थे. तीनों भाषाओं में समकालीन समीक्षा की जो कसौटी को मानदंड थे उनसे परिचित थे। बहुभाषी को तुलनात्मक दृष्टि प्राप्त रहती ही है।

''हृदय में समभाव रखते हुये किसी विषय पर सर्वांगीण दृष्टि से विचार करने के बाद जो मत प्रकट किया जाता है वही समालोचना है। पं. तिवारी की मान्यता थी ''शुद्ध समालोचक के लिये आवश्यक है कि वह शुद्ध साहित्य का निर्विकार प्रेमी हो, विद्वान हो, समृद्ध हो, निर्भय हो और समालोचक की हैसियत से न तो किसी का मित्र हो न शत्रु।'' समर्थ समालोचक ने योग्य समालोचक के गुण, मानदंड, विचारणीय बिन्दुओं पर काफी कुछ लिखा। समालोचना के क्षेत्र में बहुत कम लोग सफल हो पाते है। पं. तिवारी के समालोचना पर प्रस्तुत विचार बिन्दु काफी महत्व के है। विषय पर गहन अध्ययन, स्वयं की बुद्धि से लेखन, निर्भिकता, सहृदयता देश काल, वातावरण का ज्ञान, व्यक्तिगत आक्षेप से दूर रहना, रचनात्मक आलोचना पं. तिवारी के अनुसार एक समालोचक के लिये आवश्यक है।

पं. तिवारी ने गांधी मीमांसा नामक वृहदाकार ग्रंथ की रचना की. इस पुस्तक में गांधीवाद की समीक्षा है. व्यवहारिक व सैद्धांतिक दोनों पक्षों का सम्यक विवेचन है. गांधी भक्त होने के बावजूद

पंडित जी ने गांधीवाद के अव्यवहारिक पक्ष की काफी आलोचना की है. प्यारेलाल गुप्त ने इस संबंध में लिखा है ''गांधी मीमांसा को हम साहित्यिक राजनीतिक ग्रंथ भी कह सकते हैं. ''के.पी. तम्बोली ने लिखा है – ''गांधी मीमांसा गांधीवाद पर इससे और अच्छी पुस्तक अभी तक देखने को नहीं मिली है यह ग्रंथ करीब 900 पृष्ठों का है।

उन्नत ललाट, गौरवर्ण, चमकती आंखे, साढ़े पांच फुट की ऊंचाई रामदयाल तिवारी की यह बाह्य छवि थी। वकील, साहित्यकार और स्वतंत्रता संग्राम सेनानी ये तीन आयाम थे तिवारी जी के।

डॉ. म.प्र. पांडे– ''रामदयाल तिवारी छत्तीसगढ़ के ऐसे विचारक थे जिनका सम्यक मूल्यांकन नहीं हो पाया है। वे अखिल भारतीय स्तर के व्यक्ति थे। गांधीवाद क्या है। गांधी के क्या विचार थे ? सूक्ष्म रूप से सामने लाने वाले तिवारी जी थे।गांधी, मीमांसा इसी का प्रतिफल था। छत्तीसगढ़ की वैचारिक यात्रा में तिवारी जी का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।''

रामावतार पांडेय – ''बीसवी सदी के प्रारंभ में रायपुर को रामदयाल तिवारी की विद्वता के कारण जाना जाता था। संस्कृत कवि भारती अर्थगौरव के लिए प्रसिद्ध है। तिवारी जी का गांधी मीमांसा भी अर्थ गौरव वाली है। तिवारी जी छत्तीसगढ़ के विद्यासागर थे।''

डॉ. राजेन्द्र प्रसाद पांडे – ''समर्थ समालोचक राम दयाल तिवारी छत्तीसगढ़ और छत्तीसगढ़ के बाहर भी प्रशंसा के पात्र रहे, मूर्धन्य विद्वान, सर्व कालीन विद्वान थे। गरीबी में जिस व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास हुआ उसने समाज को दिशा दी।''

हिन्दी और अंग्रेजी दोनों भाषाओं में समान रूप से माहिर थे। रायपुर के टाउन हाल में प्रफुल्लचन्द्र राय का भाषण था धारा प्रवाह अंग्रेजी में बोलने वाले राय के भाषण को हिन्दी में भाष्यांतर करते श्रोताओं को सुनाने का दायित्व श्री तिवारी ने वहन किया। कार्यक्रम के अंत में श्री राय ने मुक्त कंठ से तिवारी जी की प्रशंसा की। गांधी एक्सरेड नामक अप्रकाशित पुस्तक की पं. जवाहर लाल नेहरू और डॉ. राधाकृष्णन ने प्रशंसा की। प्रशंसा पत्र अभी भी श्री आशीष ठाकुर के पास सुरक्षित है।

डॉ. गंगा प्रसाद गुप्त – ''आर्थिक विपन्नता और अभावों के मध्य रहकर भी जीवन्त संघर्ष करने वाले तिवारी जी ने अपने व्यक्तित्व का निर्माण स्वयं किया था। साहित्य और राजनीतिक विचारधारा के क्षेत्रों में तिवारी जी की सेवाओं को विस्मृत करना कृतघ्नता होगी। वे

केवल छत्तीसगढ़ के ही नहीं बल्कि संपूर्ण प्रदेश और देश की मूल्यवान विभूति थे। उनके टक्कर का कोई दूसरा प्रतिभाशाली व्यक्तित्व इस क्षेत्र में दिखाई नहीं पड़ता।''

पं. राम दयाल तिवारी ने स्वयं अपने संबंध में लिखा है – ''स्वतंत्रत रूप से किसी बात पर विचार करने की मन प्रवृत्ति मुझमें बिलकुल स्वाभाविक है। बुद्धि स्वातंत्र्य से प्रेरित होकर विचार क्षेत्र में मैं अपनी बुद्धि को ही प्रामाणिक मानने का अभ्यासी हूं – दूसरों के प्रमाण देकर किसी बात को सिद्ध करना मेरी आलोचक मनोवृत्ति को आज तक पसंद नहीं आई। मेरी तो यही धारणा अद्यावधि रही आयी है कि एक बुद्धिमान मनुष्य के लिए उसकी बुद्धि से बढ़कर कोई प्रमाण नहीं हो सकता।

रामेश्वर शुक्ल अंचल – ''विद्वता, विचार– स्वातंत्र्य, आत्मविश्वास, निर्भीकता, हृदय शीलता, वैज्ञानिक तटस्थता और राग द्वेष हीनता से उनकी आलोचनाएं पूर्ण होती थी एक दार्शनिक प्रकाश उनकी आलोचनाओं को प्रकाशित किये था।''

श्री हरि ठाकुर –'' तिवारी जी ने टालस्टाय से लेकर गांधी, पूंजीवाद से लेकर समाजवाद तक की मीमांसा अपने ग्रंथ गांधी मीमांसा में की है। युग की सभी राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक प्रवृत्तियों का विश्लेषण उन्होंने किया है। उन्होंने तटस्थ रहकर राजनीतिक घटनाओं और प्रवृत्तियों का अध्ययन किया था इसलिए उन्होंने जो भी निर्णय दिया वह निष्पक्ष था। अपने विचारों पर चिन्तन प्रक्रिया पर उन्हें किसी का हस्तक्षेप पसन्द न था। वे स्वतंत्र एवं मौलिक चिन्तक थे। उन्होंने लिखते समय कभी यह विचार नहीं किया कि उससे कोई प्रसन्न होगा या नहीं। राजनीतिक समीक्षक के पथ से वे क्षणभर भी विचलित नहीं हुए।''

सन् 1942 में भारत छोड़ो आंदोलन की घोषणा बम्बई में की गई। अस्वस्थता के बावजूद श्री तिवारी बम्बई गये और वहां कार्यक्रमों में भाग लिये। वहां से लौट कर रायपुर में 20 अगस्त 1942 को उनका निधन हो गयां। सम्पूर्ण छत्तीसगढ़ को श्री तिवारी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर नाज है। नये छत्तीसगढ़ राज्य के प्रशासकों का ध्यान श्री तिवारी के उपलब्धियों की ओर जाना चाहिए और रायपुर में उनकी मूर्ति की स्थापना, उनके नाम पर राज्य स्तरीय पुरस्कार की घोषणा करनी चाहिए। कृतज्ञ राज्य की यही पहचान होती है।

## ऐतिहासिक धरोहर

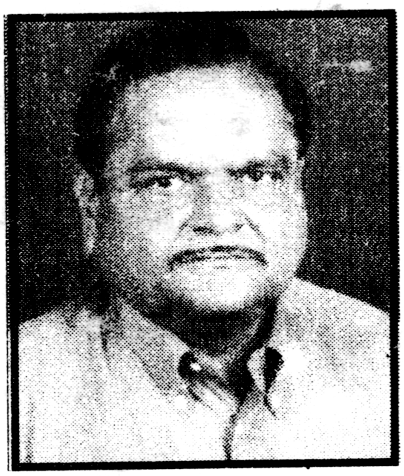
# ' कैसरे हिन्द दरवाजा '

छत्तीसगढ़ के राजधानी रायपुर के हृदय स्थल जयस्तंभ चौक के पास रवि भवन से लगा कैसरे हिन्द दरवाजा एक ऐतिहासिक धरोहर है , जिस पर अंचल को गर्व है । पुरातात्विक महत्व के इस स्थल को बचाने के लिए रायपुर के बुद्धिजीवियों , पत्रकारों , वकीलों को काफी मशक्कत करनी पड़ी थी । रायपुर नगर निगम कार्यालय की कुछ पुरानी इमारतों को तोड़कर व्यवसायिक परिसर बनाने की योजना बनी थी । परिसर में कैसरे हिन्द दरवाजा आंख की किरकिरी बना हुआ था । दरवाजे को ढहाने वालों के मंसूबों पर पानी फिर गया । कैसरे हिन्द दरवाजे के रक्षकों की विजय हुई और व्यवसायिक परिसर का नक्शा इस ढंग से बनवाया गया कि यह ऐतिहासिक धरोहर बनी रहे । अस्तित्व की लड़ाई में विजयी यह दरवाजा आज भी सर उठाये अपनी ऐतिहासिक विजय का ढिंढोरा पीट रहा है । 1975 में अपनी लड़ाई जीता, यह दरवाजा अब रायपुर की निशानी बन गया है। ऐतिहासिक इमारतों व धरोहरों की जब गणना होती है तब प्राथमिकता के साथ इस दरवाजे की गणना होती है।

लगभग बारह मीटर की ऊंचाई वाले इस कैसरे हिन्द दरवाजे का इतिहास दरवाजे फतहपुर सीकरी में जैसा बुलंद दरवाजा बनवाया था । शायद वही प्रेरणा स्त्रोत रहा हो । सरकारी अमला नहीं चाहता था कि सरकार की ओर से दरवाजा बना है, अतः यह निर्णय लिया गया कि दानदाताओं से प्राप्त दान राशि से दरवाजा बने । कैसरे हिन्द दरवाजे के भीतरी भाग में दांयी व बांयी ओर फारसी इबारत है । इनसे दरवाजे के बारे में जानकारी मिलती है । जनवरी 1877 में निर्मित इस इमारत को तत्कालीन **तहसीलदार इरशाद अली** ने अपने निरीक्षण में बनवाया था । दरवाजा को बनाने वाले कारीगर का **नाम राम सिंह गौर** था जिन दानदाताओं के सहयोग से दरवाजा बना उनके नाम व

उनके द्वारा दी गई राशि दरवाजे में अंकित है। सर्वश्री जैतूसाव 2000 रू. कन्हैयालाल 1000 रू. फेहरसिंह 500 रू., पीलासाव 500 रू. बद्रीनाथ 500 रू. किशन राव 500 रू., सिरपतराव 400 रू., इस प्रकार से 5400 रू.कुल खर्च हुए। 877 ई. में रुपये की कीमत बहुत अधिक थी। आज के हिसाब से पांच लाख रू. अनुमानित है। इरशाद अली तहसीलदार को शायद निर्माण के संबंध में पूरी आजादी थी। मीनार व गुम्बद युक्त मुस्लिम शैली, शायद इसीलिए अपनाई गयी। **हिन्दू दानदाताओं से प्राप्त राशि से मुस्लिम शैली में ईसाई महारानी के लिए यह दरवाजा निर्मित हुआ।**

1877 ई. में निर्मित यह दरवाजा काफी मजबूत बना है। एक फुट मोटा और डेढ़ फुट लंबा पत्थर मजबूती सेजोड़ा गया है। सीमेन्ट के स्थान पर मजबूती के लिए पहले मसाला तैयार किया जाता था। इस मसाले में उड़द का दाल व सरेस भी मिलाया जाता था। इस मसाले को वजनदार पत्थर से निर्मित मोटे पहिये से गोलाकार गड्ढे में डालकर खूब मिलाया जाता था। यह मसाला बनाने की पुरातन भारतीय पद्धति थी। यह मसाला यदि ढंग से बने तो सीमेन्ट को भी मात देने वाला होता था लगभग एक सौ पच्चीस वर्ष व्यतीत हो गये मगर इसकी दीवारे आज भी अपनी मजबूती का अहसास कराती है। कैसरे हिन्द दरवाजे अपनी प्राण रक्षा में सफल रहा। रवि भवन व्यवसायिक परिसर के मुख्य प्रवेश द्वार के रूपें यह अपनी ऐतिहासिकता प्रदर्शित करते हुए रायपुर के इतिहास के पृष्ठ का वह भाग है जो अंचल को **गौरवान्वित तो नहीं** करता मगर ऐतिहासिक धरोहर के रूप में अपनी उपस्थिति लगातार दर्शाता रहने वाला है। अंग्रेजी भारत के इतिहास कायह पृष्ठ तत्कालीन इतिहास का एक जीवंत पृष्ठ है। इतिहास जानने के प्रमुख साधन के रूप में इमारत व इबारत मान्य है। इन दोनों के कारण कैसरे हिन्द दरवाजा भावी पीढ़ी को इतिहासका ज्ञान कराता रहेगा।



## डॉ. राम कुमार बेहार

| | | |
|---|---|---|
| जन्म स्थान | - | सारंगढ़ (रायगढ़) जन्म तिथि - 15 नवम्बर 1946 ई. |
| शिक्षा | - | एम.ए.इतिहास (1969 ई.) पी-एच.डी. (1987 ई.) |
| प्रकाशन | - | बस्तर आरण्यक -1985 ई. |
| | - | आदिवासी बस्तर इतिहास एवं परम्पराएं 1992 ई. |
| | - | बस्तर एक अध्ययन 1995 ई. |
| | - | तेरी मेरी उसकी कहानी(2001 ई.) |
| | - | छत्तीसगढ़ इतिहास के प्रमुख प्रकरण (अप्रैल 2002) |
| | - | गुण्डाधुर : बस्तर का जननायक (मई 2002) |
| | - | इतिहास पद्धति एवं इतिहास लेखन |
| | - | विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में 200 से अधिक लेख कविताकहानी |
| | - | 30 से अधिक शोध पत्र प्रकाशित |
| सम्मान | - | म.प्र. दलित साहित्य अकादमी बस्तर इकाई - अप्रैल 1991 |
| | - | पुलिस प्रशासन रायपुर अदम्य साहस पुरस्कार जनवरी 2002 |
| | - | दुर्गा महाविद्यालय, रायपुर - इतिहास लेखन हेतु, जनवरी 2002 |
| | - | बिलासा साहित्य सम्मान 2002 |
| सम्प्रति | - | प्राचार्य शास. दूधाधारी श्री वैष्णव स्नातकोत्तर संस्कृत महाविद्यालय, रायपुर (4 जून 2001 से) |
| | - | अध्यक्ष छत्तीसगढ़ शोध संस्थान, रायपुर |
| | - | संपादक : शोध उपक्रम, रायपुर |
| | - | प्रांतीय सचिव : छत्तीसगढ़ संस्कृत परिषद |
| | - | महासचिव : प्राचार्य फोरम छत्तीसगढ़ |
| | - | सचिव : छत्तीसगढ़ संस्कृत बोर्ड |
| | - | शोध निदेशक : पं. रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय, रायपुर |
| | - | उपाध्यक्ष : छत्तीसगढ़ी ब्राम्हण समाज, रायपुर |
| | - | सचिव : दूधाधारी श्री वैष्णव न्यास निधि समिति, रायपुर |
| | - | कुल सांसद : पं. रविशंकर शुक्ला विश्वविद्यालय, रायपुर |
| सम्पर्क | - | 370, सुन्दर नगर, रायपुर (छ.ग.)दूरभाष-2242888 (नि.) |